# भारतीय वाङ्मय

**भाग २**

ाषा प्रचार समिति, वर्धा

# भारतीय वाङ्मय

## (भाग दूसरा)



लेखक

डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय और

श्री रसूल अहमद 'अबोध'

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

हिन्दीनगर, वर्धा।

## प्रकाशकका वक्तव्य—

'भारतीय वाङ्मय' की तरह अुसके प्रकाशनकी कहानी भी लम्बी है। वर्षों पहले सभी भारतीय-भाषाओं तथा अुनके साहित्यका अैतिहासिक परिचय देनेवाले अेक ग्रंथके प्रकाशनकी कल्पना की गयी थी। अुस समय यह काम असम राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके कर्मठ संचालक स्वर्गीय कमलदेव नारायणने अपने जिम्मे लिया। अुन्होंने कुछ सामग्री अेकत्र की भी। किन्तु वे अपने कर्मठ जीवनके आरम्भमें ही अपने साथियोंको छोड़कर चले गये। अब अिस ग्रंथका प्रकाशन हमारे लिअे आवश्यकता ही नहीं, भावनाका भी विषय बन गया।

कुछ समयतक साधनोंके अभावमें यह कार्य यूंही अुपेक्षित पड़ा रहा। बादमें श्री बलभद्र ठाकुरने अिस कार्यको हाथमें लिया। अुन्हें अिसके निमित्त भिन्न-भिन्न विद्वानोंसे मिलने जानेके लिअे काफी प्रवास करना पड़ा। ठाकुरजी ने पर्याप्त सामग्री अिकट्ठी की। खेद है कि जिस कार्यके लिअे अुन्होंने अितना परिश्रम किया था वे अुसकी पूर्णाहुति पड़नेतक वहां न रह सके।

अुसके बाद अिस कार्यको महापण्डित राहुल सांकृत्यायनकी देख-रेखमें श्री बैजनाथसिंह 'विनोद' तथा श्री श्रीकान्त व्यासने आगे बढ़ाया। विद्वानोंके निबन्ध जुटाने और छपवानेके कार्यमें काफी 'आज नहीं कल' हुआ है। संतोषका विषय है कि विशेष विलम्बसे ही सही हम अपनी कल्पनाको साकार कर पाये हैं।

जिन महानुभावोंने 'भारतीय वाङ्मय' के लिअे विद्वत्तापूर्ण निबन्ध लिखनेका कष्ट किया है, हम अुन सभीके कृतज्ञ हैं।

विज्ञ पाठकोंसे आगामी संस्करणके लिअे अुपयोगी सूचनाओंकी प्रतीक्षा रहेगी। धन्यवाद।

—आनन्द कौसल्यायन

# प्राक्कथन

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाने हिन्दीतर प्रदेशों और विदेशोंमें हिन्दी-प्रचारका जो काम पिछले कुछ वर्षोंमें किया है अुसे यहां दोहरानेकी आवश्यकता नहीं है। संक्षेपमें यही कह देना पर्याप्त है कि गत वर्ष सन् १९५० में समिति द्वारा संचालित राष्ट्रभाषाकी भिन्न-भिन्न परीक्षाओंमें १८५७४४ छात्र बैठे थे। समितिकी ओरसे परीक्षाओंके लिअे कितने ही पाठ्य-ग्रंथ भी प्रस्तुत किये गये, किन्तु हमारे भारतीय गणराज्यकी राष्ट्रभाषा होनेके कारण हिन्दीका स्थान अब विश्वकी प्रतिष्ठित भाषाओं—अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, चीनी और जापानी—मेंसे अेक है। अिसलिअे अब हमें विश्व-साहित्यको अपने झरोखेसे देखना है, और विश्वको भी अपना प्रत्यक्ष परिचय देना है। अिसीलिअे राष्ट्रभाषा प्रचार समितिने पृथक् रूपसे साहित्य-निर्माण-विभाग स्थापित किया। अिसके द्वारा स्वीकृत योजनाके अनुसार हिन्दी, असमिया, बंगला, अुड़िया, तेलगू, तामिल, मलयालम, कन्नड, मराठी, गुजराती, सिंधी, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, सिंहली, जावी, चीनी तथा योरपकी चार भाषाओंमें साहित्य और भाषाके अध्ययन तथा परस्पर आदान-प्रदानके लिअे जो कार्य पिछले वर्षके अन्तसे आरम्भ हुआ है, अुसमें काफी प्रगति हुअी है। जहांतक ग्रंथोंके तैयार करनेका सवाल है, अुसमें कोअी रुकावट नहीं है। समितिने अुदारतापूर्वक अपने बजटमें व्ययके लिअे पर्याप्त धन भी स्वीकृत किया है। किन्तु, प्रेस और कागजकी कठिनाअियां भारी बाधा अुपस्थित करती हैं, जिन्हें दूर करनेके लिअे प्रयत्न हो रहा है।

अुक्त योजनाके अनुसार सभी भाषाओंके साहित्यका अितिहास हिन्दीमें और हिन्दीके साहित्यका अितिहास अुन भाषाओंमें लिखनेका काम चल रहा है। ये ग्रन्थ अेक-अेक भाषाके अलग-अलग होंगे, जिनमें अधिकारी

विद्वान् कुछ अधिक विस्तारसे लिखेंगे। लेकिन भारतीय वाङ्मयका संक्षिप्त अितिहास विद्यार्थियोंके लिअे सबसे पहिले आवश्यक था, जिसे निम्न पाँच भागोंमें तैयार किया गया है :

भाग १— संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश।
भाग २— हिन्दी और अुर्दू।
भाग ३— बंगला, अुड़िया और असमिया।
भाग ४— मराठी, गुजराती, पंजाबी और सिंधी।
भाग ५— तामिल, तेलगू, मलयालम और कन्नड़।

भारतीय साहित्यका आरम्भ संस्कृतके वैदिक कालसे होता है। तबसे दसवीं या बारहवीं सदीके अन्ततक, जोकि अपभ्रंशके साहित्य-निर्माणका कालान्त है, अुसकी अविच्छिन्न रूपरेखाकी प्रगति और विकास होता चला आया है। हिन्दी और दूसरी प्रादेशिक भाषाओंमें जो अपने-अपने अितिहास लिखे जाते हैं, अुनके देखनेसे भासित होता है कि हमारा प्रादेशिक वाङ्मय केवल संस्कृतका ही अुत्तराधिकारी और अुसीसे अनुप्राणित है। किन्तु, यह धारणा प्राकृत और अपभ्रंश साहित्यके संक्षिप्त अितिहासको देखनेसे गलत सिद्ध होगी। अुत्तरी भाषाओंमें तो संस्कृतके छन्द अुतने नहीं लिये गये जितने अपभ्रंशके। रामायण-महाभारत आज सभी भाषाओंमें मिलते हैं; मिलते ही नहीं हैं, बल्कि अपने-अपने साहित्यमें अुच्च कविकर्मके लिअे मूर्द्धन्य माने जाते हैं।

रामायण-महाभारत आदिकी निर्माणधाराको भी यदि हम देखें तो वाल्मीकि और व्यासकी कृतियोंकी अपेक्षा प्राकृत और अपभ्रंशके कवियोंका प्रभाव कम नहीं दिखाअी पड़ता है। स्वयंभूका रामायण (अपभ्रंश) अिसका अेक अुदाहरण है जिसमें किसी-किसी स्थानपर रामचरितमानससे अद्भुत साम्य है। विस्तृत काल और देशमें निर्मित होते हुअे भी भारतीय साहित्यकी

अन्तर्धारा बड़ी अेकता रखती है। यह अच्छा होगा यदि भारतकी सभी प्रादेशिक भाषाओंके रामायण और महाभारतका हिन्दीमें सुंदर अनुवाद कर दिया जाय, जिसमें कविताकी विशेषता जहांतक हो सके नष्ट न होने पाये। अगर अकदेमीसियन वरान्नकोफ तुलसीकृत रामायणका प्रायः अुतनी ही मात्राके छन्दोंमें रूसी अनुवाद करके तुलसीके काव्य-सौंदर्यको बहुत हदतक सुरक्षित रख सके हैं, तो हमारे देशकी भिन्न-भिन्न भाषाओंके रामायण-महाभारतका हिन्दीमें सुन्दर अनुवाद करना कठिन नहीं है, क्योंकि अुनमें सत्तर और अस्सी प्रतिशततक वही तत्सम और तद्भव शब्द व्यवहृत होते हैं, जो कि हिन्दीमें। यही नहीं, प्राचीन जावी (कवि) भाषामें भी रामायण और महाभारतके बहुत सुंदर काव्य मौजूद हैं। पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्रके 'कृष्णायन' से आठ सौ वर्ष पहले जावाकी भाषामें अेक सुन्दर कृष्णायन-काव्य लिखा गया था, जो सौभाग्यसे काल और समाजकी अुथल-पुथलसे बचकर आज भी मौजूद है। अुसे भी हमें हिन्दीमें लाना है। हमारा कर्तव्य है कि हम हिन्दी साहित्यको अेक विशाल साहित्यके रूपमें दुनियाकी सात भाषाओंमें महत्वपूर्ण स्थान दिलावें। अिसके लिअे हर हिन्दी साहित्यकार और साहित्यिक संस्थाका कर्तव्य है कि वह अैसा प्रयत्न करे कि विश्वकी कोअी भी प्राचीन या अर्वाचीन ज्ञाननिधि अैसी न बचे जिसतक पाठक केवल हिन्दीके सहारे न पहुंच सके।

२८ मअी, १९५१
हर्नक्लिफ हैपीवेली,
मसूरी।

—राहुल सांकृत्यायन

राष्ट्रभाषाके कर्मठ प्रचारक
**स्वर्गीय कमलदेव नारायण**
की
पुण्य स्मृतिमें

# सूची

पहला अध्याय

# हिन्दी साहित्य

डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
एम० ए०, डी० फिल्, डी० लिट्

# हिन्दी साहित्य

आर्यावर्तके मध्यदेश अर्थात् अुत्तर भारतमें राजस्थान, पूर्वी पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बिहार और मध्यप्रान्तके अुत्तरी हिस्सेवाले बड़े भू-भागके आधुनिक साहित्य, पत्र-पत्रिकाओं, पठन-पाठन और शिष्ट समुदायकी प्रधान भाषाका नाम हिन्दी है। 'हिन्दी' फारसी भाषाका शब्द है। अपने यहाँके प्राचीन ग्रन्थोंमें अिस शब्दका प्रयोग नहीं मिलता। भारतीय शब्द 'सिन्धु', 'सिंन्ध' और 'सिंधी' फारसीमें क्रमशः 'हिन्दु', 'हिंद' और 'हिंदी' हो जाते हैं। भारतीय शब्दोंका प्रयोग तो अेक विशेष नदी, प्रदेश और अुस प्रदेशके निवासियोंके अर्थमें होता था, किन्तु अुनके फारसी रूपांतरोंका प्रयोग सर्वथा भिन्न अर्थमें होने लगा। 'हिन्दू' शब्दसे हिन्दू धर्म माननेवाली समस्त हिन्दू जातिका बोध होता है। 'हिन्द' से मुसलमानी शासनकालमें अुत्तर भारत और आधुनिक समयमें समस्त भारतवर्षका अर्थ लिया जाता है। 'हिन्दी' का सामान्य अर्थ है 'हिन्दका' 'हिन्दका निवासी', 'हिन्दसे सम्बन्ध रखनेवाला', किन्तु अुसका विशेष अर्थ अेक भाषाका द्योतक है। शब्दार्थकी दृष्टिसे 'हिन्दी' शब्दका प्रयोग भारतवर्षकी सभी भाषाओंके लिअे हो सकता है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टिसे अुत्तर भारतके अुपर्युक्त भू-भागकी वर्तमान साहित्यिक भाषा तथा अिसी भू-भागकी बोलियों और अुनसे सम्बन्धित प्राचीन साहित्यके

अर्थमें अुसका प्रयोग होता है। साधारणतया 'हिन्दी' शब्दका प्रयोग अिसी अर्थमें प्रचलित है और बिहारकी भोजपुरी, मगही, मैथिली; राजस्थानकी मारवाड़ी, मेवाती आदि तथा बघेली, छत्तीसगढ़ी, पहाड़ी, ब्रज, अवधी आदि सभीको 'हिन्दी' शब्दके अन्तर्गत माना जाता है। साधारणतया प्रचलित प्रयोगके अनुसार हिन्दी भाषाका प्रयोग करनेवालोंकी संख्या बारह करोड़से भी अधिक है।

भाषा-शास्त्रकी दृष्टिसे अूपर दिअे हुअे विशाल भूखण्डके अंतर्गत राजस्थानमें बोली जानेवाली बोलियोंके समूहकी द्योतक राजस्थानी, बिहारकी बिहारी, और अुत्तरमें पहाड़ोंकी पहाड़ी आदि भाषाअें 'हिन्दी भाषा' से पृथक मानी जाती हैं। अिसलिअे भाषा-विज्ञानके विद्वानोंके मतानुसार भाषा-शास्त्रके सूक्ष्म भेदोंकी दृष्टिसे 'हिन्दी भाषा'का विस्तार-क्षेत्र कुछ सीमित रह जाता है— पश्चिममें पूर्वी पंजाब, अुत्तरमें तराअी और पूर्वमें फैजाबाद, प्रतापगढ़ तथा अिलाहाबादके जिले। मध्यप्रांतमें सीमा-सम्बन्धी परिवर्तन नहीं होता और रायपुर तथा खण्डवातक ही वह जाकर ठहरती है। अिस भू-भागमें भाषा-शास्त्रकी दृष्टिसे 'हिन्दी' के दो भाग किये जाते हैं —पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी। पश्चिमी हिन्दीके अंतर्गत खड़ी बोली, बाँगरू, ब्रज, कन्नौजी और बुन्देली पाँच बोलियाँ, और पूर्वी हिन्दीके अन्तर्गत अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी तीन बोलियाँ मानी जाती हैं।

अिस प्रकार 'हिन्दी' शब्द तीन अर्थोंमें प्रचलित है— (१) मूल शब्दार्थ, (२) प्रचलित तथा साहित्यिक अर्थ और (३) भाषाशास्त्रीय अर्थ। तीनों अर्थ ठीक हैं और अुनका प्रयोग करते समय सावधानी अपेक्षित है। संसारके भाषा-समूहोंको देखते हुअे हिन्दी भारत-यूरोपीय कुलके

भारत-ओीरानी अुपकुलमें भारतीय-आर्य शाखाकी आधुनिक भाषाओंमेंसे ओक मुख्य भाषा है।

भारतवर्षमें भाषाओंके दो प्रधान परिवार हैं—आर्य-भाषा परिवार और द्रविड़ भाषा परिवार। हिन्दी आर्य-भाषा परिवारकी भाषा है और अुसका विकास-काल १००० ओीस्वीके लगभगसे माना जाता है। हिन्दी तथा अुसके अन्तर्गत मानी जाने वाली विविध बोलियोंकी अुत्पत्ति अपभ्रंशोंसे हुओी। शौरसेनी अपभ्रंशसे पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी और पहाड़ी भाषाओंका सम्बन्ध है। राजस्थानीका संपर्क शौरसेनीके नागर अपभ्रंश रूपसे अधिक है। बिहारीका सम्बन्ध मागध अपभ्रंशसे और पूर्वी हिन्दीका अर्द्धमागधी अपभ्रंशसे है। भाषा-तत्त्वके आधारपर किये गये आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओंके वर्गीकरणके अनुसार राजस्थानी पश्चिमी वर्ग, पश्चिमी हिन्दी मध्यदेशीय ( बीचके ) वर्ग, पूर्वी हिन्दी तथा बिहारी पूर्वी वर्ग, और अुत्तरकी पहाड़ी भाषाओं पहाड़ी वर्गके अन्तर्गत हैं।

राजस्थानी पंजाबीके दक्षिणमें है। जिस प्रकार हिन्दीका अुत्तर-पश्चिमकी ओर फैला हुआ रूप पंजाबी है, अुसीप्रकार हिन्दीका दक्षिण-पश्चिमकी ओरका विस्तार राजस्थानी है। अिसी विस्तारका अन्तिम रूप गुजराती है। राजस्थानीकी मेवाती, मालवी, मारवाड़ी और जयपुरी चार प्रधान बोलियाँ हैं। मेवाती अलवर और दिल्लीके दक्षिणमें गुड़गाँवके आसपास, मालवी अिन्दौर राज्यमें, मारवाड़ी जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर तथा अुदयपुर राज्योंमें और जयपुरी जयपुर, कोटा और बूंदी राज्योंमें बोली जाती है। राजस्थानीवाले भू-भागकी साहित्यिक भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी है।

बँगला, अुड़िया और आसामीके साथ बिहारीकी अुत्पत्ति मागध अपभ्रंशसे हुअी। वह केवल बिहारमें ही नहीं वरन् संयुक्त प्रांतके पूर्वी भाग अर्थात् गोरखपुर-बनारस कमिश्नरियोंसे लेकर पूरे बिहार प्रान्तमें तथा छोटा नागपुरमें बोली जाती है। हिन्दी भाषा बिहारीकी 'चचेरी बहिन' कही जा सकती है। बिहारीकी तीन मुख्य बोलियाँ हैं—मैथिली, जो गंगाके अुत्तर दरभंगा जिलेके आसपास बोली जाती है, मगही जो पटना और गयामें बोली जाती है, और भोजपुरी जो संयुक्त प्रान्त गोरखपुर और बनारस कमिश्नरियोंसे लेकर बिहार प्रान्तके आरा ( शाहाबाद ) चंपारन और सारन जिलोंमें बोली जाती है। बिहारमें साधारणतः कैथी और मैथिली लिपियाँ चलती हैं, किन्तु साहित्यमें तथा छपाअीके लिअे देवनागरी अक्षरोंका प्रयोग किया जाता है। बिहारकी साहित्यिक और शिक्षा सम्बन्धी भाषा हिन्दी ही है।

पहाड़ी भाषाअें बहुत-कुछ मारवाड़ी और जयपुरीसे मिलती-जुलती हैं। पूर्वी-पहाड़ी नेपालकी प्रमुख भाषा है, जिसे नेपाली, पर्बतिया गोरखाली और खसकुरा भी कहते हैं। आधुनिक कालमें अिसमें कुछ साहित्यिक रचनाओंकी सृष्टि भी हुअी है। नेपालके राजदरबारमें हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपिका बहुत आदर है। मध्य-पहाड़ी गढ़वाल रियासत और कुमायूं तथा गढ़वाल जिलोंमें बोली जाती है। अल्मोड़ा—नैनीताल प्रदेशकी बोलीको कुमाअुँनी और गढ़वाल राज्य तथा मसूरीके आसपासके प्रदेशकी बोलीको गढ़वाली कहते हैं। कुछ दिनसे अिन दोनों बोलियोंमें भी पुस्तकें प्रकाशित होने लगी हैं। वैसे यहाँके निवासियोंने साहित्यके लिअे हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपिको अपना रखा है। पश्चिमी पहाड़ी बहुत-सी पहाड़ी बोलियोंके समूहका नाम है, जो संयुक्त

प्रान्त जौनसार-बावरसे लेकर काश्मीरकी भदरवार जागीरतक फैली हुअी हैं। ये बोलियाँ टकरी या तक्करी लिपिमें लिखीं जाती हैं। अुनका न तो कोअी सर्वमान्य मुख्य रूप है, और न अुनमें साहित्य ही प्राप्य है।

## हिन्दी और अुसकी बोलियाँ

अूपर यह बताया जा चुका है कि भाषा-शास्त्रकी दृष्टिसे आठ मुख्य बोलियोंके समुदायको 'हिन्दी' नामसे पुकारा जाता है, जिनमेंसे पाँच पश्चिमी हिन्दीके और तीन पूर्वी हिन्दीके अन्तर्गत मानी जाती हैं। अिन आठ बोलियोंका संक्षिप्त वर्णण नीचे दिया जाता है।

खड़ीबोली— अपने मूल रूपमें खड़ीबोली रामपुर रियासत मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून, अम्बाला, और कलसिया तथा पटियाला रियासतोंके पूर्वभागमें बोली जाती है। मुसलमानी प्रभावके निकट रहनेसे ग्रामीण खड़ी बोलीमें अरबी-फारसीके तद्भव और अर्द्धतत्सम शब्दोंका प्रयोग अन्य बोलियोंकी अपेक्षा कुछ अधिक होता है। खड़ीबोली बोलनेवालोंकी संख्या ५३ लाखके लगभग है। यही खड़ीबोली आधुनिक साहित्यिक भाषाओं;— हिन्दी, अुर्दू, तथा हिदुस्तानी—का मूलाधार है। जब अुसमें संस्कृत तत्त्व प्रधान रहता है तो वह खड़ीबोली हिन्दी, या केवल हिन्दी या केवल खड़ीबोली कही जाती है। अिसी हिन्दी और देवनागरी लिपिमें आधुनिक साहित्यका निर्माण हो रहा है और यही हिन्दी राष्ट्रभाषाके पदपर आसीन हुअी है। जब यही खड़ीबोली अरबी-फारसीके अत्यधिक तत्सम और अर्द्धतत्सम शब्दोंसे समन्वित हो जाती है, फारसी लिपिमें लिखी जाती है, विदेशी वातावरणमें रंग जाती है, तो अिसे 'अुर्दू' कहते हैं। 'अुर्दू' का शब्दार्थ है बाजार। आरंभमें अुर्दू बाजारू भाषा ही थी। अुसका प्रयोग दिल्ली या

शाहजहाँनाबादके महलोंसे बाहर शाहीफ़ौजी बज़ारोंमें होता था। विदेशी राज्य होनेके कारण अरबी-फ़ारसी शब्दोंका प्रचार तो हो ही गया था। विदेशियोंसे बातचीत करनेके लिअे जब देशी बोलीमें अरबी-फ़ारसी शब्दोंका मिश्रण होने लगा तो अुर्दूका जन्म हुआ। अैतिहासिक दृष्टिसे साहित्यिक अुर्दू आधुनिक साहित्यिक हिन्दीसे कुछ पुरानी है। अुर्दूका साहित्यमें प्रयोग दक्खिण हैदराबादके मुसलमानी दरबारसे आरम्भ हुआ और औरंगाबादके वलीसाहब अुर्दू साहित्यके जन्मदाता माने जाते हैं। अिस प्रकार भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे हिन्दी और अुर्दू खड़ीबोलीके दो साहित्यिक रूप मात्र हैं।

खड़ीबोलीका अेक और रूप है, जिसे हिन्दुस्तनी कहते हैं। यह नाम यूरोपियनोंका दिया हुआ है। आधुनिक साहित्यिक हिन्दी या अुर्दू भाषाका परिमार्जित बोलचालका रूप हिन्दुस्तानी कहा जाता है। अुसमें देशी-विदेशी सभी प्रकारके प्रचलित शब्द काममें आते हैं। किंतु व्यवहारमें हिन्दुस्तानीका झुकाव अुर्दूकी ओर अधिक रहता है। यदि अुसे अुत्तर भारतके कुछ शिक्षित लोगोंकी बोलचालकी अुर्दू कहा जाय तो अधिक अुपयुक्त होगा। जनसाधारणमें हिन्दुस्तानीका प्रयोग बहुत कम पाया जाता है। साधारण अशिक्षित लोग अपनी-अपनी प्रादेशिक बोलियोंका व्यवहार करते हैं, जैसे, ब्रज, अवधी, कन्नौजी आदि। दक्खिणके ठेठ द्रविड़ प्रदेशोंको छोड़कर खड़ीबोलीका यह व्यावहारिक रूप अुत्तर भारतमें समझ लिया जाता है। हिन्दुस्तानीका कोअी साहित्य नहीं है और वह देवनागरी और फ़ारसी दोनों लिपियोंमें लिखी जा सकती है।

बाँगरू—यह बोली पंजाबके दक्खिण-पूर्वी भाग या बाँगर प्रदेशमें बोली जाती है। अुसे जाटू या हरियानी भी कहते हैं। वह यदि हिन्दीकी सीमांत बोली मान ली जाय तो अनुचित न होगा। दिल्ली, करनाल,

रोहतक, हिसार, पटियाला, नाभा, झींद आदिकी ग्रामीण बोलियाँ बाँगरू कही जाती हैं। यह पंजाबी, राजस्थानी और खड़ी बोली तीनोंका मिश्रण है। बाँगरू बोलनेवालोंकी संख्या २२ लाखके लगभग है। कुरुक्षेत्र और पानीपतके प्रसिद्ध युद्ध-क्षेत्र अिसी बोलीकी सीमामें पड़ते हैं।

ब्रजभाषा—ब्रजमण्डलमें ब्रजभाषा बोली जाती है। मथुरा, आगरा, अलीगढ़ और धौलपुरमें अिसका विशुद्ध रूप मिलता है। खड़ी बोलीके साहित्यिक पदपर आसीन होने (१९ वीं शताब्दी) से पूर्व ब्रजभाषा ही प्रधान साहित्यिक भाषा थी। गोकुलमें वल्लभसंप्रदायकी स्थापनासे ब्रजभाषा साहित्यका सूत्रपात माना जाता है। ब्रजभाषामें अितना बड़ा और सुन्दर साहित्य निर्मित हुआ है कि अिसकी तुलना संसारके किसी भी अुच्च कोटिके साहित्यसे की जा सकती है। प्रसिद्ध कवि सूरदासने ब्रजभाषा में काव्यरचना की। आज भी अनेक कवि प्राचीन ब्रजभाषामें काव्य रचना करते हैं। ब्रजभाषा बोलनेवालोंकी संख्या ७९ लाखके लगभग है।

कन्नौजी—यह बोली ब्रजभाषासे बहुत मिलती-जुलती है, और ब्रजभाषा और अवधीके बीचके क्षेत्रमें बोली जाती है। कन्नौजीका केन्द्र तो फरूख़ाबाद है, किन्तु हरदोअी, शाहजहाँपुर, पीलीभीत, अिटावा, कानपुरके आसपासतक अिसका प्रयोग मिलता है। कन्नौजके निवासी अनेक प्रसिद्ध कवियोंने ब्रजभाषामें रचनाअें कीं। कन्नौजी बोलनेवालोंकी संख्या ४५ लाखके लगभग है।

बुन्देली—यह बोली बुन्देलखंडमें ब्रजभाषा क्षेत्रके दक्षिणमें बोली जाती है। झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भूपाल, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी, और होशंगाबादमें अिसका शुद्ध रूपमें प्रयोग होता है। मिश्रित रूपोंमें यह दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट,

तथा छिंदवाड़ाके कुछ भागोंमें पायी जाती है। बुन्देलखंड मध्यकालीन हिन्दी साहित्यका प्रधान केन्द्र रहा, किन्तु कवियोंने रचनाअें ब्रजभाषामें ही कीं। बुन्देली बोलनेवालोंकी संख्या ६६ लाखके लगभग है।

अवधी— अवधीको कोशली और बैसवाड़ी भी कहते हैं। वास्तवमें दक्षिण-पश्चिमी अवधी ही बैसवाड़ी है। अवधीमें जायसीकृत 'पद्मावत' और गोस्वामी तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' जैसे ग्रंथरत्न अुपलब्ध हैं। यह लखनअू, अुन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, खीरी, फ़ैज़ाबाद, गोंडा, बहराअिच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकीके अतिरिक्त अिलाहाबाद, फ़तेहपुर, कानपुर, मिर्जापुर और जौनपुर जिलोंके कुछ भागोंमें भी बोली जाती है। अवधी बोलनेवालोंकी संख्या १ करोड़ ४२ लाखके लगभग है।

बघेली— अिस बोलीका केन्द्र रीवाँ है। किन्तु किसी न किसी रूपमें यह मध्यप्रान्तके दमोह, जबलपुर, मांडला तथा बालाघाट जिलों-तक प्रचलित है। बघेली बोलनेवालोंकी संख्या ४६ लाखके लगभग है।

छत्तीसगढ़ी— यह बोली मध्यप्रान्तमें रायपुर और बिलासपुरके जिलों तथा काँकेर, नन्दगाँव, खैरगढ़, रामगढ़, कोरिया, सरगुजा, अुदयपुर आदि राज्योंमें प्रचलित है। बघेली और छत्तीसगढ़ीका अपना, कोअी साहित्य नहीं है। अिन प्रदेशोंके साहित्यिक समय-समयपर ब्रज, अवधी या आधुनिक कालमें, खड़ीबोलीमें साहित्यिक रचनाअें प्रस्तुत करते रहे हैं। छत्तीसगढ़ी बोलनेवालोंकी संख्या ३८ लाखके लगभग है।

हिन्दीकी अिन आठ बोलियोंके अतिरिक्त हिन्दीके साथ विशेष सम्बन्ध तथा संयुक्त प्रांतकी अेक मुख्य बोली होनेके कारण भोजपुरी भी अुल्लेखनीय हैं। वह बनारस, मिर्ज़ापुर, जौनपुर, गाज़ीपुर, बलिया,

गोरखपुर, बस्ती, आज़मगढ़, शाहाबाद, चम्पारन, सारन तथा छोटा नागपुरतक बोली जाती है। किन्तु अिसमें कोअी विशेष साहित्य नहीं मिलता। भोजपुरी प्रदेशके साहित्यिक भी ब्रज, अवधी या आधुनिक कालमें खड़ी बोलीमें रचना करते रहे हैं।

हिन्दी प्रदेशमें साहित्य-रचनाकी दृष्टिसे ब्रज, अवधी और खड़ी-बोली मुख्य बोलियाँ हैं। गत अेक हजारसे कुछ अधिक वर्षोंमें हिन्दी भाषाका यथेष्ट विकास हुआ है। अीसाकी दसवीं शताब्दीसे लेकर सोल-हवीं शताब्दीके लगभग तक हिन्दीकी बोलियोंपर प्राकृत और अपभ्रंशका स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अुस समय हिन्दी बोलियोंके निश्चित रूप विकसित ही हो पाये थे। सोलहवीं शताब्दीके बाद अपभ्रंशका प्रभाव बिल्कुल हट गया और हिन्दीकी बोलियाँ, विशेषतः ब्रज और अवधी, स्वतंत्रतापूर्वक अपने पैरोंपर खड़ी होने योग्य बनीं। यह विकास-काल अीसाकी अुन्नीसवीं शताब्दी (१८००) तक चलता रहा। तत्पश्चात् अंगरेजी शासन-कालमें ब्रजभाषा और अवधी क्षीण हो गयीं और अुनके स्थानपर खड़ीबोलीका प्रयोग हुआ— पहले गद्यक्षेत्रमें और फिर काव्य क्षेत्रमें। प्रेस तथा अन्य आधुनिक वैज्ञानिक साधनोंके कारण खड़ीबोलीका प्रसार अत्यन्त तीव्र गतिसे हुआ। बीसवीं शताब्दीमें वह पूर्णरूपसे साहित्यिक भाषा हो गयी है। अुन्नीसवीं शताब्दीके अंततक काव्यके लिअे ब्रजभाषा-का प्रयोग होता रहा। किन्तु ब्रजभाषा अब भी पूर्णतया साहित्यिक क्षेत्रसे लुप्त नहीं हुअी।

## हिन्दीका शब्द-समूह, ध्वनियाँ और शास्त्रीय विकास

हिन्दीमें अनेक शब्द तो सीधे संस्कृतसे आये हैं जिन्हें तत्सम कहते हैं। आधुनिक हिन्दीमें अैसे शब्दोंका समावेश दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। अिसके अतिरिक्त हिन्दीमें अैसे शब्दोंकी भी बड़ी भारी संख्या है

जो सीधे प्राकृतसे आये हैं, अथवा प्राकृतसे होते हुअे संस्कृतसे निकले हैं। अैसे शब्द तद्भव कहे जाते हैं। अनेक शब्द अैसे भी हैं जो संस्कृतके होते हुअे भी प्राकृत भाषियोंके प्रयोगों द्वारा भिन्न रूपमें हमारे सामने आते हैं। अिस प्रकारके शब्दोंको अर्द्धतत्सम कहते हैं। आधुनिक भारतीय आर्य-भाषा समुदायसे आये हुअे शब्द हिन्दीमें कम हैं। तत्सम और तद्भव शब्द-सहमूके अतिरिक्त अनेक शब्द अैसे हैं जिन्हें देशज कहते हैं, जिनकी व्युत्पत्तिका कोअी पता नहीं, अथवा जो भारतमें आर्यागमनसे पूर्व यहाँके मूल निवासियोंमें प्रचलित थे, किन्तु बहुत पहले ही जिनमें अर्थ-विपर्यय हो गया था। सैकड़ों वर्षोंतक विदेशी जातियोंके शासनमें रहनेके कारण हिन्दीपर विदेशी भाषाओंका काफी अधिक प्रभाव पाया जाता है। मुसलमानी शासन-कालमें अरबी, फारसी, तुर्की, पश्तो आदिके अनेक शब्द हिन्दी भाषाके अंग बन गये। अुन्नीसवीं शताब्दीके प्रारंभसे अँग्रेज़ी तथा अँग्रेजीके माध्यम द्वारा अन्य यूरोपीय भाषाओंके अनेक शब्द हिन्दीमें प्रचलित हो गअे हैं। अैसी भाषाओंमें अँग्रेजी, फ्रांसीसी, डच और पुर्तगाली भाषाओंके नाम अुल्लेखनीय हैं। अिन सभी प्रकारके विदेशी शब्दोंका संबन्ध या तो बाहरसे आअी हुयी चीज़ोंसे है अथवा विदेशियों द्वारा स्थापित संस्थाओंसे है। यहाँ अिस बातका ध्यान रखना चाहिअे कि विदेशी शब्दोंका ध्वन्यात्मक विकास होकर हिन्दीमें आगम हुआ। अरबी-फ़ारसी ध्वनियों जैसे, क़, फ़, ग़, ज़ आदिका प्रयोग होता भी है, नहीं भी होता। वैसे भाषाकी ध्वनियों, रूपों और अर्थोंके शास्त्रीय विकासकी दृष्टिसे हिन्दी प्राचीन आर्यभाषाओंकी ही ऋणी है।

## लिपि और अंक

हिन्दी प्रदेशमें अुर्दू, रोमन, कैथी, मुड़िया, मैथिली आदि अनेक लिपियोंका थोड़ा-बहुत व्यवहार होता अवश्य है, किन्तु देवनागरी लिपिका स्थान सर्वोपरि है। अैतिहासिक दृष्टिसे देवनागरीका अंतिम सम्बन्ध

भारतकी प्रचीनतम राष्ट्रीय लिपि ब्राह्मीसे है। अुत्तर भारतमें देवनागरी लिपिका प्रयोग आठवीं और दसवीं शताब्दियोंके बीच होने लगा था। आधुनिक देवनागरी लिपि अुसीका विकसित रूप है। लिपिकी भाँति नागरी अंक भी प्राचीन ब्राह्मी अंकोंके परिवर्तनसे बने हैं। आधुनिक अंक-क्रमका प्रचार पाँचवीं शताब्दीके लगभग सर्वसाधारणमें था।

## साहित्य

बहुत दिनोंतक हिन्दी साहित्यकी धारा अबाध गतिसे प्रवाहित होती रही, किंतु अपभ्रंश काल और हिन्दीके निर्माण-कालसे लेकर अुन्नीसवीं शताब्दीके लगभग मध्यतक सामग्री बिखरी पड़ी रही और अुसके संग्रह तथा अितिहासकी ओर किसीका ध्यान न गया। अुन्नीसवीं शताब्दीमें देशी-विदेशी विद्वानोंने साहित्यकी अन्तरंग और बहिरंग सामग्रीके आधारपर साहित्यके अितिहासका निर्माण करना प्रारंभ किया। अुस समयसे लेकर अबतक अिस क्षेत्रमें काफी कार्य हो चुका है और हो रहा है। किन्तु तब भी हमारे साहित्यकी सामग्री अनेक दृष्टियोंसे अपूर्ण है। अभी तो प्रचुर सामग्री अनेक राजकीय पुस्तकालयों तथा निजी संग्रहोंमें दबी पड़ी है। अुस समस्त सामग्रीके प्रकाशमें आनेपर संभवतः हिन्दी साहित्यके अितिहासमें बहुतसे परिवर्तन करने पड़ेंगे। अिसके अतिरिक्त सामग्रीकी सुरक्षा, ग्रंथोंका वैज्ञानिक सम्पादन आदि अनेक अैसी समस्याअें हैं जिनका सुलझना परमावश्यक है।

## काल-विभाजन

अुपलब्ध सामग्रीके अध्ययनके आधारपर हिन्दी साहित्यका अितिहास चार भागोंमें विभक्त किया जाता है—१-आदिकाल (९४३अी०-

१३१८ अी० ), २–भक्तिकाल ( १३१८ अी०—१६४३ अी० ), ३–रीति-काल ( १६४३ अी०—१८४३ अी० ) और ४–आधुनिक काल (१८४३ अी०–) । हिन्दी साहित्यका यह काल-विभाजन बहुत-कुछ अैतिहासिक अथवा राजनीतिक परिस्थितियोंपर अवलंबित है। आदिकालको चारण-काल, जयकाल या वीरगाथाकालके नामसे भी पुकारा जाता है। भक्तिकाल और रीतिकालको हम अेक नाम, 'मध्यकाल' से भी अभिहित कर सकते हैं। आदिकालीन साहित्यका प्रधान केन्द्र राजस्थान रहा और अुस समय लौकिक विषयोंकी रचना प्रधान रूपसे और धार्मिक साहित्यकी रचना गौण रूपसे हुअी। अिस साहित्यमें वीर रसके अन्तर्गत व्यक्तिगत वीर-भावनाको स्थान मिला। राष्ट्रीय या जातीय भावना अुसमें नहीं पायी जाती। साथ ही अुसमें कवित्वका अभाव और वर्णनात्मकताका प्राधान्य मिलता है। भक्ति और रीतिकालोंमें राजस्थानके अतिरिक्त मध्य-देश और महाराष्ट्रमें भी साहित्य-सृजन हुआ। भाव, भाषा आदिके कलात्मक सौन्दर्यकी दृष्टिसे साहित्यकी अभूतपूर्व अुन्नति हुअी। भक्त कवियों-की दृष्टि पारलौकिक विषयों और रीति कवियोंकी दृष्टि पारलौकिकके वेशमें लौकिक विषयोंकी ओर लगी रही। भक्तिकाल हिन्दी साहित्यके अिति-हासमें स्वर्ण-युग कहा जाता है। किन्तु राष्ट्रीय भावनाओंका अभाव अिस युगमें भी था। अिस अभावकी पूर्ति आधुनिक कालमें हुअी। हिन्दी साहित्यके अितिहासमें आधुनिक युग नवीन विकास, व्यापक दृष्टिकोण और गद्यका युग है। आज संपूर्ण भारत अुसका रचना-क्षेत्र बना हुआ है।

## आदिकाल

आदिकालमें हिन्दी साहित्यके विस्तार-क्षेत्रकी राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक दशा अच्छी नहीं थी। सातवीं शताब्दीके मध्यमें अन्तिम महान् हिन्दू सम्राट हर्षवर्धनके देहावसानके बाद देशकी राजनीतिक

व्यवस्था अराजकतापूर्ण और विशृंखल हो गयी। अिसी समय भारतकी पश्चिमोत्तर सीमापर तुर्कोंके आक्रमण शुरू हुअे और धीरे-धीरे समस्त हिन्दी भू-भाग तुर्क आक्रमणकारियोंके हाथमें चला गया। किन्तु साथ ही अेक विदेशी जातिके साथ संपर्क स्थापित होनेसे देशका सांस्कृतिक जीवन भी प्रभावित हुअे बिना न रह सका। विदेशी आक्रमणकारियोंके यहीं बस जानेसे यह प्रभाव स्थायी और व्यापक रूपमें प्रकट हुआ। धार्मिक दृष्टिसे अिस समय बौद्ध धर्मका ह्रास हो रहा था और शंकराचार्य द्वारा वैदिक धर्म अुत्तरोत्तर बलशाली बन रहा था। साथही वैदिक धर्मके अंतर्गत अनेक संप्रदायोंकी स्थापना हुअी, जिनमें पारस्परिक स्पर्द्धा छिड़ी रहती थी। अैसे समयमें संगठित सामाजिक व्यवस्थाकी आशा नहीं की जा सकती। समाजमें वर्ण-भेद, गोत्र, जाति-पाँति आदिके झगड़े बढ़ गये थे और बाल विवाह प्रचलित था तथा विधवा-विवाह-निषेध चल पड़ा था। अिस प्रकार आदिकालीन हिन्दी-प्रदेशकी दशा अत्यन्त दयनीय थी और सामन्तोंका बोलबाला था। हिन्दी साहित्यके आदियुग और अपभ्रंश परंपराके संबंधमें अभी सन्तोषजनक खोज नहीं हुअी। कुछ लेखक केवल नाममात्रसे परिचित ग्रंथोंके आधारपर हिन्दी साहित्यको बहुत पीछे खींच ले जाते हैं, किंतु अुसे अधिक प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता।

भाषाकी दृष्टिसे हिन्दीका आदिसाहित्य अपभ्रंश साहित्य और भाषा साहित्य अिन दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। विषयकी दृष्टिसे अपभ्रंश साहित्यमें धार्मिक विषयोंकी रचना और भाषा साहित्यमें लौकिक विषयोंकी रचना मिलती हैं। अपभ्रंश (धार्मिक) साहित्यके अंतर्गत भी दो धाराअें मानी जाती हैं— १. जैन, और २. बौद्ध। जैन और बौद्धोंने अपभ्रंशको अपनाया था। अिस साहित्यकी खोजमें कुछ अैसे ग्रन्थ मिले हैं जो पुरानी हिन्दीमें लिखे गये हैं। हेमचन्द्र (११४२ अी० ), मेरुतुंगाचार्य, सोमप्रभाचार्य आदिके ग्रंथोंमें मिले अुदाहरणोंसे पुरानी

हिन्दीका अस्तित्व सिद्ध होता है। तथा अन्य कवियोंकी रचनाओंमें कथाओंके माध्यम द्वारा जैन सिद्धांतोंका निरूपण मिलता है। जैन-ग्रंथोंका भाषाकी दृष्टिसे जितना महत्त्व है अुतना साहित्यिक दृष्टिसे नहीं। भाषाकी दृष्टिसे भी अनेक स्थल संदेहपूर्ण मिलते हैं। वास्तवमें जैन-साहित्यकी भाषा अपभ्रंश भाषाका अन्तिम रूप है।

अिधर बौद्ध, सिद्ध या योग साहित्यसे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ नयी सामग्री प्रकाशमें आयी है। बौद्ध धर्मकी अेक शाखा ४००–७००अी० के लगभग मन्त्रयान नामसे थी। अिसी मन्त्रयानका अुत्तर रूप वज्रयान (८००—१२०० अी० के लगभग) था। अिस शाखामें मंत्रके साथ-साथ हठयोग, स्त्री आदिका समावेशकर अेक तांत्रिक रूप खड़ा किया गया था। अिससे सम्बन्ध रखनेवाले चौरासी सिद्ध हुअे (७५०—११७५अी०) अिन सिद्धोंकी जो कुछ रचनाअें तिब्बतमें प्राप्त हुअी हैं अुनके कुछ अंश मागधी अपभ्रंशके माने जा सकते हैं। चौरासी सिद्धोंमेंसे अधिकतर नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयोंसे सम्बन्धित थे। पूर्वी पंजाब और पच्छिम अुत्तर प्रदेशमें भी कुछ सिद्ध हो गये हैं। अिस नाते अिन सिद्धोंकी अधिकांश रचनाअें पुरानी हिन्दीकी मानी जा सकती हैं। सिद्ध कवियोंके अनेक विचार बादके संत कवियोंमें भी मिलते हैं। वे सांकेतिक भाषाका प्रयोग करते थे और जनताका ध्यान योगकी अन्तर्मुखी साधनाओंकी ओर आकर्षित करना चाहते थे। बौद्धोंकी अिसी वज्रयान शाखामें गोरखनाथके नाथ–सम्प्रदायका मूल भी पाया जाता है। गोरखनाथ अीसाकी नवीं या दसवीं शताब्दीके लगभग हुअे। नाथपंथियोंने अीश्वर-प्राप्तिको लक्ष्य बनाकर पतंजलिके योग-सूत्रके आधारपर हठयोगका प्रचार किया और बाह्य विधानोंकी निरर्थकता सिद्ध की। नाथोंका प्रधान क्षेत्र पश्चिमी भारत था— राजपूताना और पंजाब— और अुनकी भाषा थी 'सधुक्कड़ी' जो साधुओं द्वारा प्रयुक्त अेक प्रकारकी मिश्रित भाषा थी।

गोरखनाथके नामसे अनेक हस्तलिखित पोथियाँ मिलती हैं, किन्तु अुन्हें कहाँतक स्वयं गोरखनाथकृत कहा जा सकता है, यह विचारणीय विषय है। अैसा प्रतीत होता है कि गोरखनाथके नामसे प्रचलित रचनाअें सांप्रदायिक रचनाअें मात्र हैं, जिनका संकलन भिन्न-भिन्न कालोंमें हुआ। वास्तवमें सिद्धों और नाथोंका महत्त्व अिसीमें है कि अुन्होंने विषय, धार्मिक प्रवृत्ति, शब्दावली आदिकी दृष्टिसे आगे चलकर निर्गुण शाखाके संत कवियोंको बहुत कुछ दिया। अुनकी रचनाअें शुद्ध साहित्यकी कोटिमें नहीं आतीं।

भाषा साहित्य (लौकिक) के अन्तर्गत नन्द, मसअूद, कुतुबअली, सांअीदान, अकरम फैज़, भुवाल, मोहनलाल द्विज आदि कवियोंकी रचनाअें मानी जाती हैं। किन्तु अिन कवियों और अुनकी रचनाओंके केवल नाम ज्ञात हैं, वास्तवमें वे रचनाअें अभी मिली नहीं हैं। कहा जाता है कि हिन्दीका सर्वप्रथम कवि पुण्ड अथवा पुष्य था। किन्तु अुसकी रचना या रचनाओंका अभी कोअी पता नहीं चला। अेक भाट कविका 'खुमान रासो' तो अुपलब्ध है किन्तु अुसमें महाराणा प्रतापतकका नाम आया है, जो काल-दृष्टिसे बिल्कुल असम्भव है। प्रसिद्ध कवि चन्दका समय अीसाकी बारहवीं शताब्दी माना जाता है। अुससे पहले जिन-जिन कवियोंका अुल्लेख मिलता है अुन सभीके सम्बन्धमें अनुमानका ही अधिक सहारा लिया गया है। यह साहित्य अीसाकी आठवीं शताब्दीसे चौदहवीं शताब्दीतकका है।

अीसाकी बारहवीं, तेरहवीं और कुछ चौदहवीं शताब्दीसे सम्बन्ध रखनेवाले भाषा साहित्य (लौकिक) से संबन्धित कुछ प्रकाशित ग्रंथ मिलते हैं जो अिस कालके बताये जाते हैं। निश्चित रूपसे अुपलब्ध ग्रंथोंमें सर्वप्रथम अुल्लेखनीय ग्रंथ नरपति नाल्हकृत 'वीसलदेव रासो' है।

हिन्दीका अस्तित्व सिद्ध होता है। तथा अन्य कवियोंकी रचनाओंमें कथाओंके माध्यम द्वारा जैन सिद्धांतोंका निरूपण मिलता है। जैन-ग्रंथोंका भाषाकी दृष्टिसे जितना महत्त्व है अुतना साहित्यिक दृष्टिसे नहीं। भाषाकी दृष्टिसे भी अनेक स्थल संदेहपूर्ण मिलते हैं। वास्तवमें जैन-साहित्यकी भाषा अपभ्रंश भाषाका अन्तिम रूप है।

अिधर बौद्ध, सिद्ध या योग साहित्यसे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ नयी सामग्री प्रकाशमें आयी है। बौद्ध धर्मको अेक शाखा ४००–७००अी० के लगभग मन्त्रयान नामसे थी। अिसी मन्त्रयानका अुत्तर रूप वज्रयान (८००—१२०० अी० के लगभग) था। अिस शाखामें मंत्रके साथ-साथ हठयोग, स्त्री आदिका समावेशकर अेक तांत्रिक रूप खड़ा किया गया था। अिससे सम्बन्ध रखनेवाले चौरासी सिद्ध हुअे (७५०—११७५अी०) अिन सिद्धोंकी जो कुछ रचनाअें तिब्बतमें प्राप्त हुअी हैं अुनके कुछ अंश मागधी अपभ्रंशके माने जा सकते हैं। चौरासी सिद्धोंमेंसे अधिकतर नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयोंसे सम्बन्धित थे। पूर्वी पंजाब और पश्चिम अुत्तर प्रदेशमें भी कुछ सिद्ध हो गये हैं। अिस नाते अिन सिद्धोंकी अधिकांश रचनाअें पुरानी हिन्दीकी मानी जा सकती हैं। सिद्ध कवियोंके अनेक विचार बादके संत कवियोंमें भी मिलते हैं। वे सांकेतिक भाषाका प्रयोग करते थे और जनताका ध्यान योगकी अन्तर्मुखी साधनाओंकी ओर आकर्षित करना चाहते थे। बौद्धोंकी अिसी वज्रयान शाखामें गोरखनाथके नाथ-सम्प्रदायका मूल भी पाया जाता है। गोरखनाथ अीसाकी नवीं या दसवीं शताब्दीके लगभग हुअे। नाथपंथियोंने अीश्वर-प्राप्तिको लक्ष्य बनाकर पतंजलिके योग-सूत्रके आधारपर हठयोगका प्रचार किया और बाह्य विधानोंकी निरर्थकता सिद्ध की। नाथोंका प्रधान क्षेत्र पश्चिमी भारत था— राजपूताना और पंजाब— और अुनकी भाषा थी ‘सधुक्कड़ी’ जो साधुओं द्वारा प्रयुक्त अेक प्रकारकी मिश्रित भाषा थी।

गोरखनाथके नामसे अनेक हस्तलिखित पोथियाँ मिलती हैं, किन्तु अुन्हें कहाँतक स्वयं गोरखनाथकृत कहा जा सकता है, यह विचारणीय विषय है। अैसा प्रतीत होता है कि गोरखनाथके नामसे प्रचलित रचनाअें सांप्रदायिक रचनाअें मात्र हैं, जिनका संकलन भिन्न-भिन्न कालोंमें हुआ। वास्तवमें सिद्धों और नाथोंका महत्त्व अिसीमें है कि अुन्होंने विषय, धार्मिक प्रवृत्ति, शब्दावली आदिकी दृष्टिसे आगे चलकर निर्गुण शाखाके संत कवियोंको बहुत कुछ दिया। अुनकी रचनाअें शुद्ध साहित्यकी कोटिमें नहीं आतीं।

भाषा साहित्य (लौकिक) के अन्तर्गत नन्द, मसअूद, कुतुबअली, सांअीदान, अकरम फैज़, भुवाल, मोहनलाल द्विज आदि कवियोंकी रचनाअें मानी जाती हैं। किन्तु अिन कवियों और अुनकी रचनाओंके केवल नाम ज्ञात हैं, वास्तवमें वे रचनाअें अभी मिली नहीं हैं। कहा जाता है कि हिन्दीका सर्वप्रथम कवि पुण्ड अथवा पुष्य था। किन्तु अुसकी रचना या रचनाओंका अभी कोअी पता नहीं चला। अेक भाट कविका 'खुमान रासो' तो अुपलब्ध है किन्तु अुसमें महाराणा प्रतापतकका नाम आया है, जो काल-दृष्टिसे बिल्कुल असम्भव है। प्रसिद्ध कवि चन्दका समय अीसाकी बारहवीं शताब्दी माना जाता है। अुससे पहले जिन-जिन कवियोंका अुल्लेख मिलता है अुन सभीके सम्बन्धमें अनुमानका ही अधिक सहारा लिया गया है। यह साहित्य अीसाकी आठवीं शताब्दीसे चौदहवीं शताब्दीतकका है।

अीसाकी बारहवीं, तेरहवीं और कुछ चौदहवीं शताब्दीसे सम्बन्ध रखनेवाले भाषा साहित्य (लौकिक) से संबन्धित कुछ प्रकाशित ग्रंथ मिलते हैं जो अिस कालके बताये जाते हैं। निश्चित रूपसे अुपलब्ध ग्रंथोंमें सर्वप्रथम अुल्लेखनीय ग्रंथ नरपति नाल्हकृत 'वीसलदेव रासो' है।

अुसका सम्बन्ध अजमेरके चौहान वंशसे है। कवि विग्रहराज चतुर्थ या वीसलदेवका समकालीन जान पड़ता है। किन्तु अिस ग्रंथके सम्बन्धमें कअी कठिनाअियाँ हैं। अिस समय जो ग्रंथ अुपलब्ध है, अुसमें सबसे बड़ी कठिनाअी तिथि-सम्बन्धी है। अभीतक अुसकी तिथि ११५५ अी० मानी जाती रही, किन्तु अब अिधर कुछ विद्वानोंका मत १२१५ अी० की ओर होता जा रहा है। कथा-भागमें अनेक संदेहपूर्ण स्थल हैं और भाषा-काल भी प्रामाणिक नहीं है। 'वीसलदेव रासो' में वीसलदेवका परमार राजा भोजकी पुत्री राजमतीसे विवाह होना, वीसलदेवका रूठकर अुड़ीसा चला जाना आदि बातोंका अुल्लेख है। वह हिन्दीका वीरगीत है। रचना अीसाकी बारहवीं शताब्दीकी और कथा पन्द्रहवीं शताब्दीके लगभग अन्तकी बतायी जाती है जो स्पष्टतः भ्रमात्मक है। भाषा यद्यपि निश्चित रूपसे राजस्थानी है, किन्तु अीसाकी बारहवीं शताब्दीकी राजस्थानी है, अिसमें सन्देह है। हो सकता है प्रारंभमें यह ग्रंथ मौलिक रहा हो, बादमें किसी व्यक्ति द्वारा संपादित हुआ हो।

दिल्लीके तोमर वंशसे सम्बन्धित चंद कविकृत 'पृथ्वीराज रासो' (११५६–११९२ अी०) हिन्दी साहित्यकी अेक महत्त्वपूर्ण रचना है। अुसमें पृथ्वीराजकी आरंभसे लेकर शहाबुद्दीनके आक्रमणतककी गाथा सविस्तार गायी गयी है। अुसमें ६९ 'समय' (सर्ग या अध्याय) हैं और वह छापेके २५०० पृष्ठोंका अेक विशालकाय ग्रन्थ है। अितिहासके अध्ययनकी दृष्टिसे यह ग्रंथ अत्यन्त अुपयोगी सिद्ध होता, यदि अुसके संबन्धमें भी वही कठिनाअियाँ न होतीं जो 'वीसलदेव रासो' के संबन्धमें हैं। अुसकी भाषा, तिथियाँ, अितिहास, कथा आदि स्थान-स्थानपर अशुद्ध हैं। अिस ग्रंथमें प्रक्षिप्त अंश भी काफी हैं और अुन्हें मूलसे अलग करनेकी आवश्यकता है। भाषामें राजस्थानी और ब्रजका मिश्रण है और

यह मिश्रित रूप भी ओसाकी सोलहवीं शताब्दीका है। 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता या अप्रामाणिकताके आधारपर हिन्दीमें विद्वानोंके दो दल हो गये थे और अिस संबन्धमें अपने-अपने पक्ष समर्थनके लिअे अनेक विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे गये। यह विवाद थोड़ा-बहुत अब भी जारी है। किन्तु अंतिम परिणाम निकलता दृष्टिगोचर नहीं होता।

जगनिक या जगनायक ( ११७३ अी० ) के 'आल्हखण्ड' का तो सबसे अधिक अनिश्चित रूप मिलता है। कुछ लोग कविको चंदका समकालीन भी मानते हैं। 'आल्हखण्ड' का संबन्ध महोबाके राजवंशसे है। जगनिक कालिंजरके राजा परमालके यहाँ भाट थे। यह राजा कन्नौजके राजा जयचन्दका मित्र था। ग्रंथमें महोबाके दो देशप्रसिद्ध वीरों आल्हा और अूदल ( अुदयसिंह ) का वीरचरित वर्णित है। स्वयं राजा परमाल तो भीरु और अशक्त था, किंतु अुसकी स्त्री मल्हना अपने अिन्हीं वीर सामंतोंकी सहायतासे कअी युद्धोंमें विजय प्राप्त कर सकी थी। वर्णनोंमें अतिशयोक्ति है। ग्रंथके अंतमें अत्यन्त करुणाजनक दृश्य है। युद्धमें सभी वीर मारे जाते हैं और रानियाँ सती हो जाती हैं। केवल आल्हा और अुसका पुत्र अिन्दल, ये दो व्यक्ति बच रहते हैं और वे गृह-परित्यागकर किसी कजरी बनमें जा बसते हैं। यह कथा बहुत दिनोंतक मौखिक रूपमें रही। १८६५ अी० में अुसका प्रथम बार संपादन हुआ। हिंदी-प्रदेशके गाँव-गाँवमें आल्हा गाया जाता है। अुसका संगीत वीरदर्पपूर्ण है। भाषा और विषयमें देशकालके अनुसार बराबर परिवर्तन होते रहे हैं। ग्रंथमें अनेक भौगोलिक अशुद्धियाँ हैं। साहित्यिक सौन्दर्य भी अुसमें कम पाया जाता है। अेक और पुराने राजनीतिक केन्द्र कन्नौजसे संबन्धित कोअी ग्रंथ अुपलब्ध नहीं हुआ। कन्नौजके दरबारमें संस्कृत अधिक प्रचलित थी। भट्ट केदार और मधुकरने क्रमशः

'जयचन्दप्रकाश' और 'जयमयंकजसचंद्रिका' नामक ग्रंथ लिखे, किंतु अुनकी प्रामाणिकतामें सन्देह है।

चारणकालके आरंभमें तथा अुससे पहले भी डाढ़ी जाति द्वारा लिखे गये कुछ ग्रन्थ मिलते हैं, जिनसे भारतीय अितिहासपर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। किन्तु भाटोंसे नीचा दर्जा होनेके कारण अुनकी रचनाअें अधिक आदर प्राप्त न कर सकीं। वीररस सम्बन्धी रचनाअें चारणकाल-तक ही सीमित न रहीं, वरन् धार्मिक और रीतिकालोंमें बराबर होती रहीं, जिनमें वीररसके स्थानपर शृंगाररसको प्रधानता दी जाने लगी। किन्तु रासो परम्परा अेक प्रकारसे आदिकालमें ही समाप्त हो जाती है।

वीर साहित्यमें कवियोंने आश्रयदाताओंके यश, युद्धकौशल, धर्म वीरता, अैश्वर्य, विलास, मृगया, युद्ध आदिका वर्णन किया है। वर्णनोंमें अतिशयोक्ति और कल्पनासे काम लिया गया है। वस्तुओं और विविध घटनाओंके वर्णनोंमें विस्तारप्रियता मिलती है। अिन रचनाओंकी अैतिहासिक दृष्टिसे परीक्षा होनी चाहिये। किन्तु सबसे बड़ी कठिनाअी यही है कि अुनकी प्रामाणिक प्रतियाँ अुपलब्ध नहीं हो सकीं।

आदिकालीन साहित्यमें अमीर खुसरो ( १२५३–१३२५ अी० ) का नाम भी अुल्लेखनीय है। अुन्होंने वीरगाथात्मक, सिद्ध और नाथ संप्रदायकी रचनाओंके बीच मनोरंजन और मनोविनोदकी सामग्री प्रस्तुत की और खड़ी बोली तथा ब्रजभाषाको सफलतापूर्वक साहित्यिक रूप दिया। हिन्दुओं तथा मुसलमानोंके बीच होनेवाले भाषा और सांस्कृतिक आदान-प्रदानकी दृष्टिसे अमीर खुसरोका महत्त्व है। अुन्होंने पहेलियों, मुकरियों, दो-सखुने आदिकी रचना कर बोलचालकी भाषाके अुदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

## भक्तिकाल

भक्तिकालतक आते-आते अुत्तर भारतमें मुसलमानी शासन स्थापित हो चुका था। दक्षिण भारतमें भी मुसलमानोंने अपनी शक्ति बढ़ानी शुरु कर दी थी और विजयश्री अुनका साथ दे रही थी। किन्तु अभीतक किसी अेक शासन प्रणालीका जन्म न हो सका था। अिब्न-बतूताके अनुसार राजनीतिक अशांति रहनेपर भी शासकोंको देश-हितकी चिंता बनी रहती थी। राजनीतिक शक्तिके साथ-साथ अिस्लाम धर्मका प्रसार भी प्रारंभ हो गया था। भारतीय सामाजिक संगठन आत्मरक्षाकी दृष्टिसे और भी कट्टर और फलतः संकीर्ण हो अुठा। साथ ही धर्मकी सजीवता कम हो चली थी। अैसे समयमें भक्ति आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। कुछ लोगोंको आश्चर्य होता है कि यह भक्ति आन्दोलन अेकदम कैसे और क्योंकर चल पड़ा। किंतु यदि हम भारतीय चिंताधाराके विकासपर ध्यान रखें तो यह बात अधिक आश्चर्यजनक प्रतीत नहीं होगी। चारण कवियोंकी वीरगाथाअें पुरानी परंपराके अनुसार ही थीं। अुसी परंपरामें देश, काल और परिस्थितियोंके अनुसार आवश्यक परिवर्तनोंके साथ— निर्गुणिया संतोंकी वाणीका विकास हुआ।

कबीर— यह निर्विवाद है कि कबीर ही निर्गुणमतके आदि-प्रतिष्ठाता थे। अुनके जीवनके संबन्धमें अनेक प्रवाद प्रचलित हैं। किंतु जहाँतक अुनकी वाणीकी रूपरेखासे संबन्ध है यह अब निश्चित रूपसे माना जा चुका है कि अुनकी विचारधाराका सिद्धों और नाथपंथी योगियोंसे सीधा संबन्ध है। कबीरने ब्रह्मके अत्यंत सूक्ष्म रूपका प्रतिपादन किया। अुनका ब्रह्म निर्गुण–सगुणसे परे, प्रत्येक कण और साँसमें व्याप्त है। अुसका नाम अक्षय और सत्पुरुष है। वह वर्णनातीत तथा ज्योति स्वरूप है। गुरु ही वह महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है जो भक्तको अीश्वरतक पहुँचा

सकता है। कबीरने मायाका खंडन करते हुअे मिथ्या मायाका अुल्लेख किया है। योग द्वारा अीश्वरानुभूति प्राप्त करनेके संबन्धमें अुन्होंने शरीरस्थ अनेक चक्रोंको जाग्रत करनेकी बात कही है। प्रेमकी प्रधानता मानते हुअे अुन्होंने अत्यंत सरस रहस्यवादको जन्म दिया और अपनी गहनतम अनुभूतियोंको साधारण भाषामें प्रकट न कर सकनेके कारण कहीं-कहीं अुलटबासियों तथा प्रतीकात्मक भाषाका प्रयोग किया। अुनकी आध्यात्मिक रचनाओंमें साधु-संगति, दया, क्षमा, संतोषका अुपदेश और कपट, माया तृष्णा, कामिनी, कांचन आदिका निराकरण मिलता है। अुन्होंने नाना मतोंका खंडन और जाति पाँतिका विरोध किया। साथ ही अवतारवाद, मूर्तिपूजा, तीर्थ-व्रत, हलाल, रोज़ा, नमाज़ आदि बाह्याडंबरों और कर्मकांडका निषेध करते हुअे अीश्वरके तात्विक रूपकी मीमांसा की। वास्तवमें वे अपभ्रंशकालसे चली आती अेक निश्चित चिंताधाराके विकासकी अन्तिम विकसित लड़ी कहे जा सकते हैं। अुनके नामपर, कबीरपंथकी स्थापना हुअी। कबीरपंथके अतिरिक्त भविष्यमें अनेक पन्थोंकी परम्परा बराबर जारी रही। अिस परम्परामें अन्तिम प्रसिद्ध सन्त हाथरसवाले तुलसीसाहब कहे जा सकते हैं, जो अुन्नीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें हुअे। अिन सन्तोंके केन्द्र तो अब भी हैं, किंतु जन-जीवनसे अब अुनका कोअी सम्पर्क नहीं रह गया। अुनमें अब अनेक अैसी बातोंका प्रचार हो गया है, जिनका खंडन स्वयं कबीर तथा अन्य सन्त गुरुओंने किया था। सन्तमतका प्रचार अधिकतर निम्न श्रेणियोंमें रहा है।

सन्त साहित्य अनुभूति प्रधान है। काव्यके बाह्य लक्षणोंका अुनमें अभाव मिलता है। भाषाका भी कोअी अेक निश्चित रूप नहीं है। सन्त साहित्य साखियों, शब्दों, और रमैनियोंके रूपमें है। कबीरके पश्चात् अुन्नीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धतक धर्मदास, नानक, मलूकदास,

दादूदयाल, वीरभान, रैदास, रामचरण, तुलसीसाहब आदि अनेक सन्त कवि हुअे और कबीर द्वारा प्रतिपादित विचारधारा थोड़े–बहुत हेरफेरके साथ प्रचलित रही। जो बातें कबीरने सूफ़ियोंसे ग्रहण की थीं अुन्हें भी सन्त कवियोंने बराबर अपनी रचनाओंमें स्थान दिया। अस्तु, कबीरके बाद प्रसिद्ध सन्त कवि तो मिलते हैं, किंतु, विचारधारामें फिर कोअी महत्त्वपूर्ण नवीन विकास नहीं मिलता। कबीर तथा अन्य सन्त कवियोंकी अुपासना पद्धति, विषय, भाव, भाषा, अलंकार, छन्द, पारिभाषिक शब्दावली, रूढ़ि-विरोधिता, खंडनात्मकवृत्ति आदि सब अुनके पूर्ववर्ती साधकों और भारतीय परम्पराकी देन हैं। अुसमें भक्ति–रस और वेदान्त–ज्ञानका अपूर्व सम्मिश्रण है।

अिस्लामके आगमनसे नयी समस्याअें अुत्पन्न अवश्य हुअी थीं, किन्तु अुनका सुलझाव भारतीय परंपराके अनुसार ही हुआ। संतमतके प्रवर्तक कबीर रामानन्दके शिष्य थे। अुन्होंने ‘राम’ नाम अपनाकर अपनी ओर जनताका ध्यान आकर्षित किया और सब धर्मोंकी अेकता स्थापित की। किन्तु अितना सब कुछ कहनेका यह तात्पर्य नहीं कि कबीर तथा अन्य सन्त कवियोंने वही कहा, जो परम्परासे चला आ रहा था। संतमतमें मौलिकताका अभाव नहीं है।

अिसी कालमें हमें प्रेमकाव्य द्वारा सूफ़ी सिद्धांतोंका प्रतिपादन मिलता है। अिस्लामके बढ़ते हुअे प्रभावने जहाँ सन्तमतको प्रभावित किया वहाँ दूसरी ओर सूफ़ीमतको गतिशील किया। सूफ़ीमतके अनुसार आत्मा प्रेमके सूत्रमें बँधकर अीश्वरतक पहुँचती है। वहाँतक पहुँचनेमें आत्माको कअी दशाअें पार करनी पड़ती हैं, जिनमेंसे अन्तिम दशा ‘अनलहक़’की है। सूफ़ियोंने प्रेमको ही सर्वस्व माना है। अुनके मतानुसार भक्त पुरुष है और अीश्वर स्त्री (देवी) है। शैतान साधकके

मार्गमें नाना प्रकारकी बाधाअें अुपस्थित करता है। हिन्दी प्रेमकाव्यमें सूफ़ीमतके अिन्हीं व्यापक सिद्धान्तोंका निरूपण पाया जाता है। प्रेमकाव्य परम्पराके सबसे अधिक प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसीकी सुन्दर रचना 'पद्मावत' (१५४० अी०) है। अिससे अुनसे पूर्वके प्रेममार्गी कवियोंका भी पता चलता है। अुन्होंने 'स्वप्नावती', 'मुग्धावती', 'मृगावती', 'खंडरावती', 'मधुमालती' और 'प्रेमावती' का अुल्लेख किया है, जिनमेंसे कुतुबनकृत 'मृगावती' और मंझनकृत 'मधुमालती' मिली भी हैं।

मलिक मुहम्मद जायसी — सूफ़ी कवि अधिकतर मुसलमान थे, किंतु अुन्होंने अपने सिद्धान्तोंके प्रचारके लिअे भारतीय कथाओं और पात्रों-को ग्रहण किया। अुन्होंने प्रेम-कहानियों द्वारा धार्मिक अभिव्यंजना की। प्रेमकथाअें रूपकके रूपमें हैं और अुनपर फ़ारसीकी मसनवी शैलीका प्रभाव है। जायसीने तो रत्नसेन और पद्मावतीकी काल्पनिक शृंगारपूर्ण कहानीमें अलाअुद्दीन, चित्तौड़ आदिका अुल्लेखकर अुसमें अैतिहासिकता भी जोड़ दी है। जायसीसे पहले तथा अुनसे बादकी रचनाओंको देखते हुअे यह कहा जा सकता है कि सन्तमतकी भांति सूफ़ीमतकी परम्परा भी काफ़ी लोकप्रिय हुअी। सूफ़ी कवियों द्वारा बोलचालकी 'अवधी' का साहित्यमें प्रयोग और दोहा-चौपाअी काव्य-पद्धतिका प्रचार हुआ। जायसी तथा अन्य प्रेममार्गी सूफ़ी कवियोंके सम्बन्धमें विशेष खोजकी आवश्यकता है।

हिन्दी साहित्यके अिसी कालमें दक्षिणके वैष्णव आचार्योंकी परम्परामें स्वामी रामानंद (१४८६ से १५१७ अी० के लगभग वर्तमान थे) और महाप्रभु वल्लभाचार्य (१४७८–१५३० अी०) हुअे, जिन्होंने पर्यटन करके अपने-अपने संप्रदायोंका प्रचार किया। रामानन्दने रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्यने निंबार्क स्वामी और विष्णुस्वामीकी विचार-धारासे प्रभावित हो क्रमशः राम और कृष्णकी भक्तिका प्रचार किया।
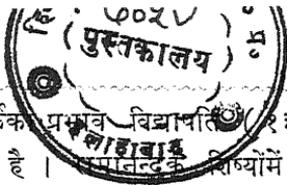
निंबार्कका प्रभाव विद्यापति (१३६८–१४७५ अी०) पर भी दृष्टिगोचर होता है। रामानन्दके शिष्योंमें कबीर, रैदास आदिने अपने अलग संप्रदायोंका प्रवर्तन किया। अुनकी अिस शिष्य-परंपरामें जाति–पाँतिका भेदभाव दूर हुआ और अुपासना-पद्धतिकी स्वतंत्रता स्थापित हुअी।

## तुलसीदास

रामानन्दके भक्तोंकी दूसरी श्रेणीमें महाकवि गोस्वामी तुलसीदास (१५३२–१६२३ अी०) हुअे, जिन्होंने रामको अवतारके रूपमें ग्रहण किया। अुन्होंने अपनी प्रतिभाके बलपर साहित्यके जितने भी रूप प्रचलित थे अुन सबको अपना लिया। अवधीमें लिखित अुनकी रामायण (१५७४ अी०) अुत्तर भारतकी बाअिबिल कही जाती है। प्रबन्धकाव्य–पटुता, मनोविकारोंका सुन्दर चित्रण, लोक-चित्तका व्यापक और यथार्थ ज्ञान आदि अिन सब बातोंकी दृष्टिसे तुलसीदास हिन्दी साहित्यमें अद्वितीय हैं। वे व्यवहार क्षेत्रमें वर्णाश्रम व्यवस्थाके पक्के समर्थक तथा अुपासना क्षेत्रमें जाति-पाँतिकी मर्यादाको व्यर्थ समझते थे। दार्शनिक दृष्टिसे अुनका मत शंकराचार्यसे अधिक मिलता-जुलता है। तुलसीदासने अपनेको घोर पतित समझकर भगवान्‌के प्रति आत्म-समर्पण कर दिया था। भक्ति अुनके जीवनका अंतिम लक्ष्य था, न कि मोक्ष। सन्त-मत द्वारा अुत्पन्न मध्यकालीन सामाजिक अेवं धार्मिक अराजकताके वातावरणमें तुलसीदासने सनातन धर्म, लोक-प्रचलित मर्यादा और समन्वयात्मक बुद्धिको प्रतिष्ठित किया। अिन्हीं तीन बातोंसे तुलसीदासका काव्यसाहित्य परिपूर्ण है। रामायणके अतिरिक्त मध्ययुगकी अिस धाराकी दूसरी लोकप्रिय भक्ति-पुस्तक ‘भक्तमाल’ (१५८५ अी० के बाद) थी। ‘भक्तमाल’ के रचयिता नाभादास तुलसीदासके समकालीन थे। अुनके ‘भक्तमाल’ में बहुतसे भक्तोंके जीवन-वृत्त संकलित हुअे हैं।

तुलसीदास द्वारा प्रवर्तित भक्तिकाव्य-धारामें आगे चलकर अनेक प्रकारकी रचनाअें हुअीं। रामचरितके आधारपर कअी अच्छे प्रबन्धकाव्य रचे गये। तुलसीदासने भक्तिको अपने पूर्ण रूपमें, श्रद्धा-प्रेम-समन्वित रूपमें, रखा था और धर्म तथा सदाचारको नित्यका लक्षण निर्धारित किया था। किंतु थोड़े ही दिन बाद रामभक्तिका यह रूप श्रृंगारी भावनाओंसे संवेष्टित होने लगा। अिस दृष्टिसे रामभक्ति कृष्ण-भक्ति शाखाकी श्रृंगारोपासना और माधुर्यभाव आदिसे प्रभावित हो अुधर ही झुकती गयी। यद्यपि स्वयं तुलसीदासने अपनी 'गीतावली' में सूरदासकी श्रृंगारी रचनाका अनुकरण किया है, किंतु वह केवल अेक अुत्सव मात्रतक रह गया है। अीसाकी अठारहवीं शताब्दीसे कृष्णवाली श्रृंगारी भावना रामभक्तिमें प्रवेश करने लगी। रामके प्रति पति–पत्नी भाव और सखी भावकी अुपासना प्रचलित हुअी। कवि लोग सीताको सौतके रूपमें या सखीके रूपमें देखने लगे। रामका सम्बन्ध रास-क्रीड़ा, होली, जल-विहार, कुंज-केलि आदिसे जोड़ा जाने लगा और तुलसीदास द्वारा प्रचलित मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामका लोक-पावन रूप श्रृंगार और विलासके कीचड़में फँस गया। किंतु अितनेपर भी रामभक्तिके शुद्ध और सात्विक रूपका भी अभाव नहीं रहा।

## अष्टछापके कवि

१५२० अी० में महाप्रभु वल्लभाचार्यने ब्रजमें गोवर्द्धनको अपना केन्द्र बनाया और श्रीनाथजीके मन्दिरकी स्थापना की। वास्तवमें ब्रजभाषा साहित्यकी निश्चित परम्परा १५२० अी० से ही प्रारंभ होती है। कृष्णभक्ति शाखाके प्रसिद्ध कवि सूरदासकी वल्लभाचार्यसे भेंट हुअी थी। वल्लभाचार्यके पुत्र गोसाअीं विट्ठलनाथ ( १५८५ में मृत्यु ) बादमें आचार्य-पदके अधिकारी हुअे। वल्लभाचार्यका मत दार्शनिक दृष्टिसे शुद्धाद्वैत और

धार्मिक दृष्टिसे पुष्टिमार्ग कहा जाता है। अिन दोनों पिता-पुत्रके चार-चार शिष्योंसे अष्टछापकी प्रतिष्ठा हुअी। अष्टछापके शिष्योंके नाम अिस प्रकार हैं — सूरदास, कुंभनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्द-स्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास। अिन शिष्योंमेंसे सूरदास (ओसाकी सोलहवीं शताब्दी) और नन्ददास ही अुत्कृष्ट कोटिके कवि हुअे हैं। कृष्णभक्ति भगवान्‌के लोकरक्षक और लोकरंजक स्वरूपको छोड़कर केवल मधुर स्वरूप और प्रेमलक्षणा भक्तिकी सामग्री लेकर चली। कृष्ण-भक्तोंके कृष्ण प्रेमोन्मत्त गोपिकाओंसे घिरे हुअे कृष्ण हैं। कृष्णका यह रूप हास-विलाससे परिपूर्ण अनन्त सौन्दर्यका समुद्र है। तुलसीदासके समान लोक-संग्रहका भाव कृष्णभक्त कवियोंमें नहीं था। जिस राधा और कृष्णके प्रेमको अिन कवियोंने अपनी भक्तिका आधार बनाया अुसे लेकर आगेके श्रृंगारी कवियोंने अनेकानेक ग्रंथोंकी रचना की। कृष्णचरितके गानके लिअे कृष्णभक्त कवियोंने गीतकाव्यकी मुक्तक परम्परा अपनाअी। अेक-दो कवि ही अैसे मिलेंगे जिन्होंने प्रबंधकाव्यके रूपमें कृष्णचरितका वर्णन किया हो वैसे भी कृष्णकी बाल और यौवन लीलाअें मुक्तक काव्यके ही अुपयुक्त थीं। मुक्तकके क्षेत्रमें कृष्णभक्त कवियोंने श्रृंगार और वात्सल्यका अत्यन्त सुन्दर रूपमें निरूपण किया।

## सूरदास

कृष्णभक्त कवियोंमें सूरदासका बहुत अूँचा स्थान है। अुन्होंने वल्लभाचार्यकी आज्ञासे श्रीमद्भागवतकी कथा पदोंमें गायी। अुनका सूर-सागर वास्तवमें भागवतके दशम स्कंधपर ही आधारित है। अन्य स्कंधोंकी कथा संक्षेपमें कह दी गयी है। सूरका 'सूरसागर' प्रेमका अद्वितीय काव्य है। कविने भिन्न-भिन्न लीलाओंके प्रसंग लेकर रसपूर्ण और मधुर अेवं मनोहर पदोंकी रचना की है। ग्रंथोंमें अनेक प्रकारके चमत्कार और काव्य

सौन्दर्यसे पूर्ण स्थल भरे पड़े हैं। अुनके सामने आगे आनेवाले कवियोंकी अुक्तियाँ जूठी-सी जान पड़ती हैं। भाषा भी अत्यन्त सरस और परिमार्जित है। बाल-स्वभाव, मातृ-प्रेम और शृंगारके संयोग और वियोग पक्षोंका मनोवैज्ञानिक चित्रण करनेमें सूर अद्वितीय हैं। मनोविकारोंका अितना सुन्दर और सरस चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। अपने भ्रमरगीतमें विरहकी पराकाष्ठा दिखाते हुअे कविने वैराग्य, ज्ञान, योग, निर्गुणवाद आदिका अत्यन्त मार्मिकताके साथ खण्डन किया है।

## नन्ददास

अष्टछापके अन्य कवियोंमें दूसरे प्रसिद्ध कवि नन्ददास सूरदासके प्रायः समकालीन थे। सूरमें हमें काव्यकी अनुपम छटा देखनेको मिलती है, अुनमें कृष्णभक्तिका सांप्रदायिक रूप नहीं मिलता। किन्तु नन्ददासने अपने ग्रंथोंमें वल्लभाचार्यके सिद्धांतोंका शास्त्रीय ढंगसे प्रतिपादन किया। अुन्होंने बहुतसे ग्रन्थोंकी रचना की जिनमेंसे 'अनेकार्थ मंजरी', 'नाममाला', 'नाममंजरी', 'रासपंचाध्यायी' और 'भँवरगीत' ही अधिक प्रसिद्ध हैं। पहले तीन ग्रंथ तो कोष हैं। 'रासपंचाध्यायी' में भागवतके आधारपर रासका वर्णन है और 'भँवरगीत' में सगुण और निर्गुणपर अुद्धव-गोपी संवाद है। अिन ग्रंथोंकी रचना लगभग अीसाकी सोलहवीं शताब्दीके मध्यमें हुअी। नन्ददासके ग्रंथोंमें माधुर्य और प्रसाद गुणों, पद-योजना, अलंकार, भाषा-प्रवाह, चित्र-शक्ति आदिकी अनुपम छटा मिलती है; अुनके शब्द रेशमपर मोतीकी तरह लुढ़कते चले जाते हैं। कहावत प्रसिद्ध है कि 'और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया'। अुनकी अनुप्रासादि-युक्त साहित्यिक ब्रजभाषा अत्यन्त सरस और मधुर बन पड़ी है। अुनका 'रासपंचाध्यायी' तो हिन्दीका 'गीत गोविन्द' माना जाता है।

## हितहरिवंश

कृष्ण-भक्ति शाखामें हितहरिवंश (१५०२ औ० में जन्म) निम्बार्क संप्रदायांतर्गत राधावल्लभी सम्प्रदायके प्रवर्तक हुअे। अिस संप्रदायको हित सम्प्रदाय भी कहते हैं। राधावल्लभी भक्त राधाके माध्यम द्वारा अपनी प्रार्थना भगवान्‌तक पहुँचाता है। सखी सम्प्रदायका सम्बन्ध भी राधा-वल्लभी सम्प्रदायसे जोड़ा जा सकता है। अपनी रचनाकी मधुरताके कारण हितहरिवंशजी वंशीके अवतार कहे जाते हैं। अुनका संस्कृत ग्रंथ 'राधा-सुधानिधि' अेक अुच्च कोटिका ग्रंथ माना जाता है। ब्रजभाषामें अुनके अत्यन्त सरस और हृदयग्राही चौरासी पद मिलते हैं जो 'हित चौरासी' के नामसे प्रसिद्ध हैं। वर्णनात्मकता और भाव-व्यंजनाकी दृष्टिसे हितजी प्रसिद्ध हैं। वास्तवमें हितजी अूंचे दर्जेके कवि और महात्मा थे। अुनके द्वारा ब्रजभाषाकी काव्यश्रीके प्रसारमें काफी सहायता पहुँची। हरिराम व्यास, सेवक, ध्रुवदास, हित वृन्दावनदास आदि अुनके शिष्य-परम्पराके अनेक कवियोंने अनेक सुन्दर रचनाअें प्रस्तुत कीं। आगे चलकर कअी राधावल्लभी कवियोंने हितजीकी जन्म-बधाअियाँ और 'हित चौरासी' पर टीकाअें लिखीं।

## मीरा

अिसी समय मीरा (औसाकी सोलहवीं शताब्दी) की रचनाओंके रूपमें माध्वाचार्यके संप्रदायका हिन्दी साहित्यसे परोक्ष रूपमें सम्बन्ध मिलता है। चैतन्य पहले अिसी सम्प्रदायमें दीक्षित हुअे थे, यद्यपि बादको वे रुद्रसम्प्रदायांतर्गत वल्लभाचार्यके मतके अधिक समीप आ गये थे। अिसी चैतन्य संप्रदायके प्रसिद्ध भक्त जीवगोस्वामीके साथ मीराका सम्बन्ध है। कहा जाता है मीराने बादको रैदाससे दीक्षा प्राप्त की। मीराकी

अुपासना माधुर्य भावकी थी। वे अपने अिष्टदेव श्रीकृष्णकी भावना प्रियतम या पतिके रूपमें करती थीं। अुनके शृंगारमें विलासिता नहीं, पूर्ण रूपसे आत्मसमर्पण है। अुनके काव्यमें आत्म-वेदना है, विरह है और शृंगारमें आध्यात्मिकता है। मीरा प्रेमकी योगिनी और हिन्दी-काव्य-काननकी कोकिला हैं। गीति-काव्यकी दृष्टिसे अुनकी रचनाअें आदर्श हैं। अुनके कुछ पद तो राजस्थानी मिश्रित भाषामें और कुछ विशुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषामें हैं। किन्तु सबमें प्रेमका अुदात्त अेवं लोकोत्तर रूप मिलता है। छंदशास्त्र-की ओर मीराने अधिक ध्यान नहीं दिया।

## रसखान

भक्तोंकी अिसी शृंखलामें पीयूषवर्षी कवि रसखान हुअे। वे मुसलमान पठान सरदार थे, किंतु गोसाअीं विट्ठलनाथसे दीक्षा लेकर श्रीकृष्ण-प्रेममें तन्मय हो अुठे। अुनका कविता-काल अीसाकी सत्रहवीं शताब्दीका प्रारंभिक भाग माना जाता है। रसखानके प्रेममें जितना रस है अुतना बहुत कम कवियोंमें मिलता है।

## रहीम और सेनापति

अकबरके राजत्व-कालमें कृष्णभक्त कवियोंके अतिरिक्त नरोत्तम-दास, आलम, गंग, बलभद्र मिश्र, रहीम, सेनापति आदि अन्य अनेक कवि हुअे। अिनमेंसे रहीम और सेनापतिने विशेष रूपसे हिन्दी साहित्यको गौरवान्वित किया। रहीम (१५५३–१६२६ अी०) अपने नीतिके दोहोंके लिअे प्रसिद्ध हैं, जिनमें संसारका गहन अनुभव भरा हुआ है। अुनका 'बरवै नायिका-भेद' भी अेक प्रसिद्ध रचना है। रहीमको ब्रज और अवधी दोनोंपर समान रूपसे अधिकार था। सेनापति (१५८६ अी० के लगभग

जन्म ) अपने ॠतु-वर्णनके लिअे विख्यात हैं। अुनके प्रसिद्ध ग्रंथ 'कवित्त रत्नाकर' (१६४६ औ०) के ॠतु-वर्णनमें प्रकृति-निरीक्षण पाया जाता है। सेनापतिकी कविता अत्यन्त मर्मस्पर्शिनी, प्रौढ़ और प्रांजल है। अुनकी भाषामें माधुर्य ब्रजभाषाका ही है, न कि संस्कृत पदावलीका। 'कवित्त रत्नाकर' में भक्तिभावसे पूर्ण भी अनेक कवित्त मिलते हैं। वास्तवमें ब्रज-भाषामें प्रकृति-वर्णन केवल अुद्दीपनके रूपमें पाया जाता है। अुसके विपरीत प्रकृतिका स्वतंत्र वर्णन करनेमें सेनापतिका महत्त्व है। किन्तु अितना होने पर भी प्राकृतिक वस्तुओंकी गणनामात्रकी दृष्टिसे सेनापति और ब्रजभाषा-के अन्य कवियोंके प्रकृति-वर्णनमें कोअी मूलभूत अन्तर नहीं है।

## रीतिकाल

हिन्दी साहित्यके अबतकके अितिहाससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्ययुगकी भावधाराका विकास बहुत-कुछ भारतीय परम्पराके अनुसार ही हुआ था। मध्ययुगका रीतिकाल भी अुसी परम्पराकी अेक प्रमुख शाखा है। अीस्वी सन्‌के बाद अैसे अनेक काव्य-ग्रंथोंकी रचना हुअी, जिनमें कवियोंकी प्रवृत्ति अलंकारों और रसोंको दृष्टिमें रखकर कवित्व-कौशल दिखानेकी ओर रही और जो अध्यात्मवादी या मोक्षकामी रचनाअें न होकर अैहिकतापर सरस रचनाअें थीं। हिन्दीमें यह प्रवृत्ति रीतिकालीन कवितामें शक्तिशाली रूपमें प्रकट हुअी। कहीं-कहीं तो वह अुपहासास्पद रूपमें मिलती है। अिस समयतक हिन्दी काव्य पूर्ण प्रौढ़ताको पहुँच चुका था। साथही मुग़लकालीन शांति अेवं धनधान्यपूर्ण वातातरणमें कवियोंके आश्रयदाताओंमें विलासिताकी मात्रा भी बढ़ती जा रही थी। दोनोंका संमि-लित प्रभाव रीति और शृंगार काव्यमें अभिव्यक्त हुआ। कवियोंने या तो अलंकारों और छन्दोंके लक्षणोंपर काव्य-रचनाअें कीं या नाट्य-विवेचनाके रसनिरूपणके अन्तर्गत नायक-नायिका-भेद, षट्‌ॠतु, नखशिख आदिका

सरस वर्णन किया। रस-निरूपणकी ओर कवियोंकी अधिक प्रवृत्ति रही। रसोंमें शृंगार रस अुनका प्रिय विषय बना, अन्य रसोंका चलता हुआ और संक्षिप्त निरुपण मिलता है। अिस साहित्यमें न तो लोकजीवनका प्रतिबिंब मिलता है, और न संस्कृतके अलंकारशास्त्र जैसी सूक्ष्म विवेचना। शास्त्रीय विवेचना तो बहुत कम कवियोंको अिष्ट थी। वे तो लक्षणोंको कवित्व करनेका अेक बहाना मात्र समझते थे।

हिन्दीकी रीति-परम्पराके कवियोंने प्रारम्भमें तो भामह, अुद्भट आदिका मार्ग ग्रहण किया था, किंतु शीघ्र ही कुवलयानन्द और चन्द्रालोकको अथवा किसी पूर्ववर्ती हिन्दी अलंकार-ग्रंथको आश्रय मानकर वे कविता करनेका बहाना ढूँढ़ निकालने लगे। अपवादस्वरूप कुछ कवि अवश्य अैसे मिलते हैं, जिनपर रीति-ग्रंथोंका प्रभाव सुस्पष्ट है। किंतु केवल अलंकार-शास्त्र ही अिस युगके कवित्वको रूप नहीं दे रहा था। कुछ और बातें भी अुसका स्वरूप निर्धारित कर रही थीं। अुन बातोंमेंसे अेक नयी बात यह थी कि लगभग सभी अुच्चकोटिके रीति-ग्रंथोंका शृंगारात्मक विषय राधा-कृष्ण और गोपियोंकी प्रेमलीलाओंपर आधारित है। अिस कालकी कवितामें यह बात काफ़ी अधिक पायी जाती है। विद्वानोंका मत है कि रीतिकालीन कविताके अिस पक्षपर भारतीय साहित्यकी स्तोत्र शाखाका प्रभाव है जिसमें कविलोग शिव, दुर्गा आदिकी शृंगार लीलाओंका निस्संकोच वर्णन करते थे। ओसाकी ग्यारहवीं शताब्दीके बाद प्राकृत और अपभ्रंश परम्पराके आधारपर जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास और सूरदास आदिकी रचनाओंमें राधा-कृष्ण और अन्य गोपियोंकी प्रेम-लीलाअें पूर्ण रूपसे विकसित हुअीं। अलंकारों और नायक-नायिकाओंके विवेचनमें ये लीलाअें ही सजायी गयीं। वास्तवमें रीतिकालीन साहित्यपर कअी प्रकारके प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं, जिनके

समझनेके लिअे नाट्यशास्त्र, कामशास्त्र आदि अनेक विषयों और तत्संबंधी पिछली साहित्यिक परम्पराके वैज्ञानिक अध्ययनकी नितान्त आवश्यकता है।

## केशवदास

हिन्दीमें तुलसीसे पहले कृपाराम, मुनिलाल, मोहनलाल मिश्र, करनेस आदि कवि रसनिरूपण और अलंकारनिरूपण कर चुके थे। अुनके बाद केशवदास ( १५५५--१६१७ अी० के लगभग ) ने काव्यके सब अंगोंका शास्त्रीय निरूपण किया। संस्कृतके पंडित होनेके कारण वे शास्त्रीय पद्धतिसे पूर्णतया परिचित भी थे। अुन्होंने भामह, अुद्भट, दण्डी आदिका अनुसरणकर रसपर 'रसिकप्रिया' ( १५९१ अी० ) और अलंकारोंपर 'कविप्रिया' ( १६०१ अी० ) नामक दो ग्रन्थ लिखे। अिन दोनों ग्रंथोंके लिअे वे संस्कृत साहित्यके ऋणी हैं। केशवने सात ग्रन्थ लिखे, जिनमेंसे 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' के अतिरिक्त 'रामचन्द्रिका' ( १६०१ अी० ) भी अेक प्रसिद्ध ग्रंथ है। 'रामचन्द्रिका' में संस्कृत ग्रन्थोंके आधारपर रामकी कथा वर्णित है। किंतु अुसके आधार-पर निश्चित रूपसे यह कहा जा सकता हैं कि केशवको कविहृदय नहीं मिला था। अुससे अुनके रचना-कौशल और पांडित्यका परिचय प्राप्त होता है। वास्तवमें अुनकी अिस प्रबन्धात्मक रचनासे काव्यांगोंका ही अधिक दिग्दर्शन होता है न कि केशवदासकी कवित्व शक्ति या भक्तिका।

## रीतिकालके अन्य कवि

किंतु हिन्दी रीति-ग्रन्थोंकी अखण्ड परंपराका सूत्रपात चिंतामणि त्रिपाठी ( १६०९ अी० में जन्म ) से होता है। अुनकी गणना ब्रजभाषाके आचार्योंमें की जाती है। मारवाड़के महाराज जसवंतसिंह ( १६२६–१६७८ अी० ) ने भी 'भाषाभूषण' की रचनाकर अपने आचार्यत्वका परिचय

दिया। बिहारी ( १६०३–१६६३ अी० के लगभग ) ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'सतसअी' की रचना यद्यपि लक्षण-ग्रंथके अनुसार नहीं की थी, तो भी अुनके दोहोंका वर्गीकरण लक्षण-ग्रन्थके अनुसार किया जा सकता है। शृंगार-रस संबंधी ग्रंथोंमें 'सतसअी' की अत्यन्त ख्याति और मान है। बिहारीने गागरमें सागर भरा है। भाव या रस-व्यंजना, अलंकारविधान, अनुभाव-विधान, भाषाके साहित्यिक सौन्दर्य आदिकी दृष्टिसे 'सतसअी' हिन्दी साहित्यका अेक बहुमूल्य रत्न है। रीतिकालके मुख्य कवियोंमें चिंतामणि और भूषणके भाअी मतिराम –( १६१७ अी० के लगभग जन्म ) कृत रस संबन्धी 'रसराज' और अलंकार सम्बन्धी 'ललित ललाम' ये दो अत्यन्त प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। अुनके भावोंमें और भाषामें कृत्रिमता नहीं है। रीतिकालके कवियोंमें अैसी रस-स्निग्ध और प्रभावपूर्ण रचनाअें बहुत कम मिलती हैं।

भूषण (१६१३ अी० में जन्म) ने शृंगार रसकी प्रचुरतामें वीर रस-की धारा प्रवाहित की। छत्रपति महाराज शिवाजी और महाराज छत्र-सालके यहाँ अुनका बड़ा मान था। अुन्होंने दो अितिहास-प्रसिद्ध वीरोंकी कृतिको अपने काव्यका विषय बनाया। अुनका 'शिवराज भूषण' अलंकार ग्रंथके रूपमें है। किंतु रीतिग्रंथकी दृष्टिसे, अलंकार-निरूपणके विचारसे, यह ग्रंथ अुत्तम नहीं कहा जा सकता। लाल कवि कृत 'छत्रप्रकाश' भी अिस कालकी अेक प्रसिद्ध वीर-रचना है। अुसका रीतिसे कोअी सम्बन्ध नहीं। दोनों कवियोंने हिंदुत्वकी भावना लेते हुअे वीररसकी निष्पत्ति की है। आदिकालीन वीर-भावनासे भूषण और लालकी वीरभावना अधिक व्यापक है। किंतु जिस प्रकार 'आल्ह खंड' सर्वसाधारणतक पहुँच गया था अथवा जिस प्रकार भक्ति-भावना जनतामें ओतप्रोत हो गयी थी, अुस प्रकार भूषण और लालकी रचनाअें सर्वसाधारणकी वीररस सम्बन्धी भावनाओंको न पकड़ सकीं।

## रीतिकालके अन्तिम कवि

रीतिकी दृष्टिसे अिस कालमें देव (१६७३ अी०में जन्म), भिखारी-दास ( १७२५–१७५० अी० कविताकाल ). और पद्माकर ( १७५३–१८३३ अी० ) भी विशेष रूपसे अुल्लेखनीय हैं। देवने 'भाव-विलास' ( १६८९ अी० ), 'जाति विलास', 'शब्द रसायन' आदि ग्रंथोंमें कवि होनेके साथ-साथ आचार्य होनेका भी परिचय दिया है। भिखारीदासने 'रस सारांश' (१७४२ अी०), 'काव्य-निर्णय' (१७४६ अी०), 'शृंगार-निर्णय' (१७५० अी०) आदिमें अपना आचार्यत्व प्रकट किया है। अन्य कवियोंकी अपेक्षा अुनमें आलोचना-शक्ति भी अधिक मिलती है। पद्माकर रीतिकालके अन्तिम प्रसिद्ध कवि हैं। यद्यपि अुन्होंने 'हिम्मत बहादुर विरदावली' (१७९२ अी० के लगभग) नामक वीर-काव्यकी रचना भी की, किंतु अुनकी प्रसिद्धि 'जगद्विनोद' (१७९९ अी० के लगभग) और 'पद्माभरण' (१७९९ अी० के बाद) नामक क्रमशः रस और अलंकार सम्बन्धी ग्रंथोंके कारण है। शृंगाररसका सुन्दर निरूपण, भाषा-प्रवाह, शब्द-विन्यास, अनुप्रास, वर्ण-मैत्री, भावको मूर्त रूप प्रदान करना, लाक्षणिकता आदि अुनकी कविताके गुण हैं।

अिन प्रसिद्ध कवियोंके अतिरिक्त बेनी प्रवीन, तोषनिधि, रसलीन, दूलह, ग्वाल, पजनेश, चन्द्रशेखर बाजपेयी, प्रतापसाहि आदि अन्य अनेक अुत्तम कवि हुअे, जिन्होंने शृंगाररस, अलंकार, छन्द आदि विभिन्न काव्यांगोंपर रचनाकर अपनी कवित्व-शक्तिका परिचय दिया और जिनका रचना-काल अीसाकी अुन्नीसवीं शताब्दीके मध्यतक आता है। रीतिकालमें रीति-सम्बन्धी रचनाओंके अतिरिक्त भक्ति और वीर-सम्बन्धी रचनाअें भी स्वयं रीतिकवियों द्वारा लिखी जाती रहीं और मुक्तक काव्यके साथ-साथ प्रबन्धकाव्य भी लिखे गये। साथ ही

अैसे कवि भी हुअे जिन्होंने प्रधान विषय तो भाव, रस, नायक-नायिका आदि ही रखे, किंतु लक्षण-बद्ध रचनाअें न कीं। ये कवि विशुद्ध प्रेम और शृंगारको लेकर आगे बढ़े। अैसे कवियोंमें घनानन्द, आलम, ठाकुर, 'द्विजदेव' आदि साक्षात् रसकी मूर्ति थे। अुनकी लेखनीसे प्रेम और शृंगारके अत्यंत सरस और अनूठे छन्द प्रसूत हुअे हैं। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता ज़बाँदानी, भाषाकी भाव-व्यंजक शक्ति, प्रेमकी गूढ़ अंतर्दशाओंके अुद्घाटन, वियोगांतर्गत अंतर्वृत्ति निरूपण, अर्थ-गांभीर्य आदिकी दृष्टिसे अिन कवियोंकी रचनाअें हिन्दी साहित्यकी बहुमूल्य निधि हैं। सूदनकृत 'सुजान-चरित' और जोधराजकृत 'हम्मीर रासो' अिस कालके प्रसिद्ध वीर-कथात्मक प्रबन्ध हैं। अिसी समय वृन्द, दीनदयाल गिरि, गिरिधर कविराय, सहजोबाअी, दयाबाअी आदि नीति और ज्ञानवैराग्यके वचन कहनेवाले कवि हुअे।

## आधुनिककाल

अुन्नीसवीं शताब्दीके शुरूमें ही रीतिकालीन कविताका अुज्ज्वल अंश म्लान पड़ चुका था। अिसी समय हिन्दी भाषा भाषियोंका पश्चिमी दुनियासे सम्बन्ध स्थापित हुआ। अभीतक जितनी जातियोंसे भारत-वासियोंका संपर्क हुआ था वे सभी अेशियाअी जातियाँ थीं। अुनके और भारतवासियोंके जीवनके प्रति दृष्टिकोणमें कोअी मूलभूत अन्तर नहीं था। पश्चिमके साथ सम्बन्ध स्थपित होनेके साथ-साथ हिन्दी साहित्यमें नवीन युगकी अवतारणा हुअी।

१७०७ अी० में औरंगज़ेबकी मृत्युके बाद भारतीय राजनीतिक क्षेत्रमें अराजकता फैल गयी थी। अुस समय भाग्यश्रीने वाणिज्य-व्यवसाय करनेके लिअे आयी यूरोपीय जातियोंमेंसे अंग्रेज़ोंका साथ दिया।

१७५७ और १८१८ अी० के बीच अुन्होंने समस्त हिन्दी प्रदेशपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। धीरे-धीरे नवीन शिक्षा और वैज्ञानिक आविष्करोंके प्रचारसे हिन्दी प्रदेशका साहित्य नये साँचेमें ढलने लगा। अिन दो विशेष कारणोंसे हिन्दीमें गद्यका विकास हुआ— जन्म नहीं। अुन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्धमें अेक ओर जहाँ ब्रजभाषा और राजस्थानी गद्य-परंपराओंका अन्त हुआ, वहाँ दूसरी ओर खड़ीबोली गद्यकी क्रमबद्ध परंपराका सूत्रपात हुआ। वास्तवमें हिन्दी साहित्यके आधुनिक युगकी अवतारणा अुन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्धकी अिन्हीं खड़ीबोली गद्य-रचनाओंसे माननी चाहिये। जिस समय हिन्दी कविता लड़खड़ाती हुअी पुरातनका बोझ ढो रही थी, अुस समय खड़ीबोली गद्य हिन्दी प्रदेशकी नवीन चेतनाका माध्यम बन रहा था। अुन्नीसवीं शताब्दी केवल राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिसे नहीं वरन् गद्यका साहित्यके प्रधान अंग बनने और अुसके माध्यम द्वारा आधुनिकताका बीजारोपण होनेकी दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण है। आधुनिक युगका भारवहन खड़ीबोली कर रही है। वैसे तो खड़ीबोलीके स्फुट प्रयोग मध्ययुगमें ही मिलते हैं, किंतु नवीन शासकोंके राज्यांतर्गत अुसका विशेष प्रचार हुआ। अस्तु, आधुनिककाल कुछ नयी विशेषताअें लेकर चलता है।

आधुनिककाल दो स्थूल भागोंमें विभक्त किया जा सकता है— अुन्नीसवीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी। अुन्नीसवीं शताब्दी फिर दो भागोंमें बाँटी जा सकती— पूर्वार्द्ध और अुत्तरार्द्ध। काव्यके क्षेत्रमें पूर्वार्द्धमें कोअी नवीनता नहीं मिलती। वीर, भक्ति, रीति, नीति, वैराग्य आदि सम्बन्धी रचनाअें ब्रजभाषामें परंपरा और रूढ़िके अनुसार होती रहीं, यद्यपि ग्वाल, पद्माकर, चन्द्रशेखर बाजपेयी, प्रतापसाहि आदि कवि अिसी समय हुअे। परंपरा-निर्वाहमें ही कवियोंने अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की।

अुनकी रचनाओंमें जीवनके प्रति नवीन दृष्टिकोण नहीं मिलता। किंतु गद्य-गाथा अिससे भिन्न है। अिस समय खड़ीबोली गद्यका क्रमबद्ध अितिहास प्रस्तुत होनेसे पूर्व रामप्रसाद निरंजनी, दौलतराम, मथुरानाथ, लल्लूलाल, अिंशा, सदलमिश्र आदि खड़ीबोलीमें गद्यरचनाअें कर चुके थे। अभीतकको अुपलब्ध सामग्रीके आधारपर अुन्हें खड़ीबोली गद्यके प्रथम अुन्नायकोंमें माना जा सकता है। अीस्ट अिंडिया कंपनीने अपने शासन सम्बन्धी कार्योंमें और फोर्ट विलियम कालेज (१८००-१८५४ अी०) ने पठन-पाठनकी दृष्टिसे खड़ीबोलीका अरबी-फ़ारसीमय रूप ग्रहण किया, यद्यपि आवश्यकतानुसार अुसके देशी रूप और देवनागरी लिपिका प्रयोग भी हो जाता था। लल्लूलाल और सदलमिश्रने क्रमशः 'प्रेमसागर' (१८०३-१८१० अी०) और 'नासिकेतोपाख्यान' (१८०३ अी०) की रचना फोर्ट विलियम कालेजमें ही की। वास्तवमें पूर्वार्द्धमें खड़ीबोली गद्यको शिक्षा-सम्बन्धी नवीन पाठ्य-पुस्तकों, अीसाअी पादरियों और समाचारपत्रों (१८२६ अी०) से विशेष प्रोत्साहन मिला। खड़ीबोलीके प्रचारमें प्रेसकी शक्तिका बहुत बड़ा हाथ रहा; नवीन चेतनाके केन्द्र कलकत्तेसे दूर होनेके कारण ब्रजभाषा और राजस्थानी गद्य-परंपराअें अुससे लाभ न अुठा सकीं। यह अेक आश्चर्यजनक बात है कि खड़ीबोली गद्यके प्रारंभिक जीवनमें ही अनेकानेक नवीन विषयोंसे सम्बन्धित पुस्तकें प्रकाशित हुअीं, शब्द भंडारकी वृद्धि हुअी और भाषाकी अभिव्यंजना-शक्ति बढ़ी।

अुन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्धमें खड़ीबोली गद्यके माध्यम द्वारा व्यावहारिक और अुपयोगी साहित्यकी रचना ही विशेष रूपसे हुअी। ललित साहित्यकी रचना अभी होनेको थी। यह कार्य अुत्तरार्द्धमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०-१८८५ अी०) के साहित्यिक नेतृत्वमें हुआ। अुन्होंने

तथा राजा लक्ष्मणसिंह, लाला श्रीनिवासदास, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्णदास, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', काशीनाथ खत्री, देवकीनंदन खत्री आदि अुनके अनेक सहयोगियोंने नाटक, अुपन्यास, निबंध, जीवनी, साहित्य आदिका निर्माण तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओंका संपादनकर खड़ीबोली गद्यमें विषय और शैलीकी विविधता अुत्पन्न की। वास्तवमें बीसवीं शताब्दीके ललित साहित्यका शिलान्यास अिसी समय हुआ। विद्यार्थियों और सरकारी संस्थाओंमें खड़ीबोलीको पहुंचानेका कार्य राजा शिवप्रसाद (१८२३-१८९५ अी०) ने किया। धर्मके क्षेत्रमें अुसके व्यवहारका श्रेय स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२४-१८८३ अी०) को है। काव्यके क्षेत्रमें यद्यपि पुरानी भाव-धारा अपने अत्यंत क्षीण रूपमें बनी रही, किन्तु भारतेन्दुने आधुनिकताका सूत्रपातकर अपने समकालीन कवियोंका मार्ग प्रदर्शन किया। नवीन कविताकी यह क्षीण धारा नवीन प्रकृति-वर्णन, देशभक्ति, भारतकी पराधीनता और राजनीतिक धार्मिक अेवं सामाजिक अधोगतिपर क्षोभ और सुधार-भावना, दुःख-दारिद्र्य, अँगरेज़ों द्वारा भारतके आर्थिक शोषण, राजनीतिक अेवं शासन-सम्बन्धी सुधारोंकी माँग, जनसत्तात्मक प्रणालीका समर्थन, अैक्य, संगठन, स्वतंत्रता आदि बातोंसे समन्वित है। किंतु अुनकी स्वतंत्रताका अर्थ अंग्रेजोंसे पूर्णतः सम्बन्ध-विच्छेद करना नहीं था। अुनका विरोध 'हिज मैजेस्टीज़ ऑपोजिशन-वाला विरोध था। भाषाकी दृष्टिसे काव्यक्षेत्रमें ब्रजभाषा और खड़ी-बोलीका संघर्ष प्रारंभ हो गया था—यद्यपि अभी प्राधान्य ब्रजभाषाका ही रहा। गद्यके क्षेत्रमें प्रारंभसे ही अेसा कोअी संघर्ष नहीं था। अिसाकी अुन्नीसवीं शताब्दीका अुत्तरार्द्धका हिन्दी साहित्य--गद्य और काव्य-व्यापक भारतीय नवोत्थान आंदोलनका अेक अुज्ज्वल अंग है। अुसने विविध सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक आंदोलनोंका अनुसरणकर अपनी सजीवताका परिचय दिया।

जिस साहित्यकी नींव अीसाकी अुन्नीसवीं शताब्दीमें पड़ी थी अुसका निश्चित रूपसे विकास अीसाकी बीसवीं शताब्दीमें हुआ है। अिस शताब्दीके प्रारंभमें काव्य-धारा दो भागोंमें विभाजित मिलती है– ब्रजभाषा और खड़ीबोली। ब्रजभाषाके लिअे प्राचीन साहित्य, विषय और कला आधार स्वरूप थे। किंतु ब्रजभाषा काव्यका ह्रास अब लगभग पूर्ण हो गया था और अिस समय राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', वियोगी हरि सत्यनारायण कविरत्न, जगन्नाथदास रत्नाकर आदि कुछ कवियोंकी रचनाअें ही अुल्लेखनीय हैं। अिधर नागरी प्रचारिणी सभा (१८९३ अी०) द्वारा प्रकाशित 'सरस्वती' (१९०० अी०) और पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी (१८६४—१९३८ अी०) के माध्यम द्वारा खड़ीबोलीका अधिकाधिक प्रचार हुआ और अुसीमें साहित्य-रचना होने लगी। वर्तमान समयमें गद्य और काव्य दोनोंके लिअे खड़ीबोलीका प्रयोग होता है, यद्यपि ब्रजभाषा अभी पूर्ण रूपसे लुप्त नहीं हुअी। प्रथम महायुद्धतकके द्विवेदी-युगमें खड़ीबोली कविता प्रकृति और मानव-जीवनके संकीर्ण वातावरणसे मुक्त हुअी और नवीन ज्ञानके आलोकमें अुसका क्षितिज विस्तीर्ण हुआ। प्रथम महायुद्धके बाद काव्यमें छायावादी-रहस्यवादी युग प्रारंभ होता है, जिसका जन्म हिन्दीके कवियोंके जीवनकी सामाजिक अेवं आर्थिक परिस्थितिकी विषमताके कारण हुआ, किंतु आगे चल जिसे दार्शनिक रूप दिया जाने लगा। भाषा, छन्द साहित्यिक रूप आदिकी दृष्टिसे तो द्विवेदी-युगके कवियोंने प्राचीन नियमबद्धताके प्रति विरोध किया ही था, किंतु छायावादी-रहस्यवादी कवियोंने कलात्मक और दार्शनिक दृष्टिसे भी नवीनता प्रदर्शित की। छायावादी-रहस्यवादी भाव-रीति आधुनिक हिन्दी साहित्यकी अद्‌भुत देन है।

अिधर आठ-दस वर्षसे हिन्दी काव्यमें कम्यूनिस्ट विचार-धारासे प्रभावित रचनाअें भी होने लगी हैं। किन्तु जिस प्रकार मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह अुपाध्याय, 'प्रसाद', पंत, 'निराला', महादेवी आदि

द्विवेदीयुग और छायावादी-रहस्यवादीयुगके प्रतिनिधि कवि, और अुनकी 'भारत-भारती', 'जयद्रथ-वध', 'साकेत', 'प्रिय-प्रवास', 'आँसू', 'झरना', 'लहर', 'कामायनी', 'पल्लव', 'गीतिका', 'यामा', 'दीपशिखा' आदि प्रतिनिधि रचनाअें कही जा सकती हैं, अुस प्रकार प्रगतिवादी प्रतिनिधि कवियों और रचनाओंका अभी अभाव है। पंतने 'युगांत' (१९३६) के बाद 'युगवाणी', 'ग्राम्या' आदिमें अधकचरा प्रगतिवाद ग्रहण किया था। लेकिन वे अब योगी अरविंदसे प्रभावित हो अध्यात्मवादकी ओर झुक गये हैं। काव्यके अतिरिक्त गद्यके क्षेत्रमें नाटकों और अुपन्यासों तथा कहानियोंका भी यथेष्ट विकास हुआ है। अिन क्षेत्रोंमें 'प्रसाद' और प्रेमचन्द सर्वोपरि हैं। निबंध, समालोचना आदिके क्षेत्रमें भी अभूतपूर्व अुन्नति हुअी है। अिस सम्बन्धमें बालमुकुन्द गुप्त, रामचंन्द्र शुक्ल, श्यामसुंदरदास, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदिके नाम विशेष रूपसे अुल्लेखनीय हैं। ललित साहित्यके अतिरिक्त अुपयोगी और व्यावहारिक साहित्यमें भी विविधता आयी है।

खड़ीबोली हिन्दी साहित्य निश्चित रूपसे स्वतंत्रता-संग्राम और पाश्चात्य प्रभावके अंतर्गत विकसित हुआ है और वह प्राचीन निर्धारित नियमावलीसे अलग हट गया है। साहित्यके बाह्य रूपमें ही नहीं अुसके भीतरी रूपमें भी परिवर्तन हुआ है। अुसमें मानवकी वैयक्तिकता, नारीका समानाधिकार, प्रकृतिमें अध्यात्मिकताका आरोप, अीश्वरके स्थानपर मानवता, पूजा-पाठके स्थानपर पीड़ितों और दलितोंके प्रति सहानुभूति, प्राचीन धार्मिक विश्वासोंके स्थानपर जीवनके नवीन मापदण्ड आदिने प्रवेश किया है। आधुनिक साहित्यिकोंने नयी दृष्टिसे दुनिया देखने और समझनेकी चेष्टा की है। प्रथम महायुद्धके बाद यह परिवर्तन अत्यन्त स्पष्ट रूपसे दिखाअी देता है। अैसा प्रतीत होता है आगे वर्ग-युद्ध, संघर्ष

और असन्तोषकी ध्वनि प्रधान होती जायगी। आजका व्यक्ति शोषण-नीतिका शिकार होकर अितना पिस गया है कि असंतोष और संघर्ष बढ़नेकी संभावना ही अधिक है। अिस प्रवृत्तिके साथ आशा है कि हमारे कवि और लेखक साहित्यिक मूल्य और विश्वकी पीड़ित मानवताके प्रति सहानुभूति तथा राजनीतिक क्रांतिके साथ सामाजिक क्रांतिके गीत गाकर संतोष, सुख, स्वतंत्रता और सामंजस्य-बुद्धिकी स्थापना करते हुअे मंगलमय भविष्यके लिअे शंखध्वनि करेंगे।

दूसरा अध्याय

# उर्दू साहित्य

श्री रसूल अहमद 'अबोध'

# अुर्दू साहित्य

भारतपर मुसलमानोंके आक्रमण, अुनकी विजय और भारतमें अुनके स्थायी रहन-सहनसे अेक अैसी नयी बोलीका बनना आरम्भ हुआ जिसमें अरब और फ़ारससे आये हुअे विदेशी मुसलमानोंकी भाषा अरबी और फारसीके शब्द और भारतीय भाषाओंके शब्द मिलते-जुलते रहे।

अरबी और फारसी शब्दोंके साथ भारतीय भाषाओंके जो शब्द आरम्भमें मिले अुनमें पंजाबकी तत्कालीन बोली पंजाबी, दिल्लीकी सौरसेनी प्राकृत और दक्खिणकी मराठी तथा तेलगू मुख्य हैं।

भारतपर मुस्लिम आक्रमणोंका आरम्भ यद्यपि द्वितीय ख़लीफ़ा हज़रत अुमरके जमानेसे ही हो जाता है, लेकिन स्थायी शासन मुहम्मद बिन कासिमकी सिन्ध-विजय ( सन् ७१२ अी० ) के बाद स्थापित होता है। अरबी अितिहाससे पता चलता है कि ख़लीफ़ा वासिक़ बिल्लाह ( लगभग सन् ८४६–८५२ अी० ) के युगतक सिन्धमें ख़लीफ़ाकी ओरसे गवर्नर नियुक्त होता रहा और मन्सूरा नामक स्थान अुसका केन्द्र था। अुसके बाद जब बग़दादका शासन निर्बल होकर छिन्न-भिन्न हो गया तो अरबोंके अैसे बहुतसे कुटुम्बोंने जो यहाँ रहते थे, अपने छोटे-छोटे शासन स्थापित कर लिये और लम्बे समयतक वे यहाँ शासन करते रहे।

अिसके अलावा कर्नाटक और मलाबारकी ओरसे भी मुसलमान व्यापारी और धर्मप्रचारक भारतमें आते रहे, जो तत्कालीन हिन्दू राजाओंकी अनुमतिसे धर्म-प्रचार करते थे।

अिसी प्रकार थोड़े समयके हेर-फेरसे अुत्तरकी ओरसे सुबुक्तगीं और महमूद ग़ज़नवीके आक्रमण (सन् १०२७ अी०के लगभग) आरम्भ हुअे। अुन्होंने पंजाबको जीतकर अपने शासनमें सम्मिलित कर लिया और लाहौरमें अपनी सेनाअें नियुक्त कर दीं।

मुहम्मद बिन कासिमकी सिन्धविजय और कर्नाटक तथा मलाबारकी ओरसे आनेवाले मुस्लिम धर्मप्रचारकोंके धर्मप्रचारका प्रभाव भारतीय जीवनपर अवश्य ही किसी न किसी रूपमें पड़ रहा था। भारतीय जनता अिन अजनबी विदेशियोंके आचार-विचार, रहन-सहन तथा बोली-बानीको देख-सुन रही थी। और यह कैसे हो सकता है कि जाने और अनजाने रूपमें अिन विदेशियोंके आचार-विचार तथा बोली-बानीसे जनता जरा भी प्रभावित न हुअी हो। बल्कि महमूद ग़ज़नवीकी पंजाब-विजय और अुसकी सेनाओंके अेक बड़ी संख्यामें लाहौरमें रहनेका जितना गहरा और व्यापक परिणाम हुआ अुसको कोअी तुलना नहीं की जा सकती।

सन् १०२७ अी० से सन् ११८७ अी० तक महमूदके वंशजोंका शासन पंजाबमें चलता रहा। सन् ११८७ अी० में मुहम्मद ग़ौरीके द्वारा ग़ज़नवी शासनका सदाके लिअे अन्त हो गया। मगर अबतक अरबी और फारसी शब्दोंके स्थानीय पंजाबीमें मिलनेसे जिस अेक नयी बोलीका निर्माण हो रहा था, और जो अेक लम्बे अर्सेकी मिली-जुली जिन्दगीका स्वाभाविक और आवश्यक

परिणाम थी, अुसपर कोअी असर न पड़ा, बल्कि मुहम्मद ग़ौरीकी विजयने अुस वातावरणको जो महमूद ग़ज़नवीकी विजय और अुसके वंशजोंकी सेनाओंके लाहौरमें स्थायी रूपसे रहनेके कारण पैदा हो गया था, और भी अनुप्राणित किया।

सन् ११९३ अी० में कुतुबुद्दीन अैबकने विदेशसे लायी हुअी अपनी सेना तथा महमूद ग़ज़नवीके वंशजोंकी पराजित सेना और पंजाबके स्थानीय लोगोंको लेकर दिल्लीपर अधिकार कर लिया तो कुतुबुद्दीन अैबकके दो सौ वर्ष पूर्व आनेवाली फारसी भाषा-भाषी सेनाके पंजाबमें रहनेवाले वंशज, जो बोली-बानीके रूपमें निश्चय ही स्थानीय जनतासे प्रभावित हुअे होंगे और जिनसे स्थानीय जनता भी अवश्य ही प्रभावित हुअी होगी, अब कुतुबुद्दीन अैबककी विदेशी फारसी भाषा-भाषी सेनाके साथ मिलजुलकर दिल्लीपर अधिकार करके वहाँ रहने लगे। दिल्लीमें यह सेना स्थायी रूपसे रहने लगी तो दिल्लीकी स्थानीय जनता, पंजाबी जनता, लगभग दो सौ वर्षसे पंजाबमें रहनेवाली ग़ज़नवी सेना तथा अिस नयी ग़ौरी सेनाके सामने भी वही परिस्थिति आयी जिसने पंजाबमें पंजाबी, अरबी और फारसीके शब्दोंको मिलाकर अेक नयी बोलीको जन्म दिया था। अतः अब दिल्लीमें भी स्थानीय बोलीके साथ अरबी, फारसी तथा पंजाबी शब्दोंके मेलसे अेक नयी मिलीजुली बोली बनने लगी।

निश्चय ही अिस नयी बोलीका अुपयोग अभीतक मोटे रूपमें व्यवहार तथा लेन-देनतक ही सीमित था और अिसका स्थानीय जनता, पंजाबके लोग और ग़ज़नवी सेनाके वंशजोंसे ही अधिकांशमें सम्बन्ध था। नये आये हुअे लोग स्वभावतः आपसमें फारसीका ही व्यवहार करते थे। सरकारी भाषा भी फारसी ही थी। मगर धीरे-धीरे अैसी अवस्था

अुत्पन्न हो गयी कि अधिकांश बोलचाल अिस नयी बोलीमें ही होने लगा।

कालान्तरमें अमीर खुसरो (सन् १२५३–१३२४ ऑ०) ने दिल्लीकी अपेक्षासे अिसी भाषाको देहलवीकी संज्ञा दी।

अमीर खुसरो न केवल अद्वितीय विद्वान् थे, बल्कि बहुरंगी प्रकृतिके व्यक्ति थे, और आविष्कार बुद्धि तो जैसे अुनके पूरे व्यक्तित्वमें ही व्याप्त थी। वे अेक ओर फारसी, अरबी, तुर्की तथा हिन्दीके ज्ञाता तथा गम्भीर लेखक थे तो दूसरी ओर अुन्होंने हलके तथा जन मनोरंजनके लिअे दोसखुने, पहेलियाँ, अनमिल जैसी चीज़ें भी लिखी थीं तथा अैसी कविताअें भी रची थीं, जिनमें अेक चरण फारसीका और अेक देशी भाषाका होता था। यथा—

**शबाने हिजराँ दराज़ चूँ ज़ुल्फ़ व रोज़े वस्लत चू अुम्र कोताह।**
**सखी पियाको जो मैं न देखूं तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ॥**

अिसके अलावा खुसरोने अपनी फारसी किताबोंमें अपनी हिन्दवी रचनाओंका जिक्र किया है, जो निश्चय ही अुस मिलीजुली बोलीका नाम है जो स्थानीय भाषाओं और विदेशी मुसलमानोंकी अरबी, फारसी और तुर्कीके शब्दोंके परस्पर मिलनेसे बनी थी और जिसको कभी-कभी अमीर खुसरो और बादमें गुजरातके शेख़ बहाअुद्दीन बाजन देहलवीके (मृत्यु १५०६ ऑ०) नामसे सम्बोधित करते हैं।

मगर राजनीतिक अुलटफेरके कारण अभीतक अिस नयी बोलीका कोअी स्थायी रूप न बन सका था। अतः अुसमें साहित्यिक रचनाओंकी गुंजाअिश न थी। अिसे सुनिश्चित रूप अुस समय प्राप्त हुआ जब अलाअुद्दीन

ख़िलजीने ( सन् १२९२–१३११ में ) दक्षिण भारतपर कअी हमले किये और आंशिक़ रूपमें दक्षिण भारतपर अधिकारकर अुसे दिल्ली साम्राज्यके आधीन कर लिया।

दक्षिण भारतपर अलाअुद्दीनके अधिकारका परिणाम यह निकला कि वह नयी बोली जो पंजाबसे बननी शुरू हुअी थी, और जो दिल्लीमें भी बन रही थी और जिसको 'देहलवी' और 'हिन्दवी' जैसे नाम भी मिल चुके थे, सेनाके कअी बारके गमनागमनके कारण वह बोली दक्षिणपर भी अेक सीमातक प्रभाव डालने लग गयी।

मगर अिस सिलसिलेकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी मुहम्मद तुग़लक़का दक्षिणपर आक्रमणकर अुसपर अधिकार कर लेना और सनकमें आकर न केवल राजधानी ही दिल्लीसे दक्षिण (दौलताबाद) ले आना, बल्कि दिल्लीनिवासी जनताको भी यह आज्ञा देना कि दौलताबादको बसानेके लिअे तुरंत प्रस्थान करे। अिसका परिणाम यह हुआ कि अेक दूसरेसे बहुत दूर रहनेवाली जनतामें अेक सीमातक मेलजोल अुत्पन्न हुआ। और जहाँतक बोलीका सम्बन्ध है बहुत जल्दी ही और काफी दूरतक अिस घटनाका प्रभाव पड़ा। मगर अिस घटनासे भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण घटना वह थी जब दक्षिणमें तुग़लक़ शासनके लगभग अिक्कीस वर्ष बाद अुसके अेक अधिकारी ज़फ़रखाँने तुग़लक़से विद्रोहकर अलाअुद्दीन हसन गंगो बहमनीकी अुपाधि धारण की और दक्षिणमें बहमनी शासनकी स्थापना की।

ज़फ़रखाँने गंगो नामक ब्राह्मणको, जिसका वह शिष्य था, अपना मंत्री बनाया। अपने शासनमें अधिकसे अधिक स्थानीयता लानेके लिअे अुसने अपनी राजभाषा दिल्लीकी तरह

फारसी न रखकर, स्थानीय भाषाओं— मराठी, तेलगू और कन्नड़ी तथा अरबी-फारसीके शब्दोंके मिलेजुले रूपको ही राजभाषाका पद दिया। यही पहले हिन्दी, हिन्दवी और बादमें दक्खिनी कहलाने लगी।

प्रारंभमें जब स्थानीय भाषाओं और अरबी-फारसी जैसी विदेशी भाषाओंके मिलेजुले रूपको हिन्दी या हिन्दवी कहा जाने लगा तो अिसका अभिप्राय अरबी-फारसी आदि विदेशी भाषा-भाषियोंके लिअे भारतीय भाषा या अुत्तर भारतकी भाषासे था, क्योंकि बहुत दिनोंतक देशके अन्य भागोंके रहनेवाले अुत्तर भारतको हिन्द या हिन्दुस्तान और वहाँके रहने-वालोंको हिन्दुस्तानी कहते थे। अतः जब पहले—पहल दक्षिणमें अैसी मिलीजुली भाषाको हिन्दी या हिन्दवी कहा गया तो अिसका अर्थ अुत्तर-भारतकी भाषा या अुत्तर भारतवालोंकी भाषासे ही था। मगर जैसे-जैसे वह भाषा सर्वप्रिय होती गयी और अुसमें अधिकसे अधिक स्थानिक रंग पैदा होता गया वैसे-वैसे अुसका नाम भी बदलकर स्थानिकता सूचक होता गया, और हिन्दी या हिन्दवीके स्थानपर 'दक्खिनी' कहा जाने लगा। अिस प्रकार न केवल दक्षिणमें ही भाषाको स्थानिकता सूचक नाम मिला, बल्कि गुजरातमें भी गुजरातीके साथ अरबी, फारसी शब्दोंके मिले हुअे रूपको गूजरी या गुजराती बोली कहा जाने लगा।

अिस प्रकार तत्कालीन मुस्लिम शासकोंके देशके विभिन्न भागोंमें आने-जाने और राज्य स्थापित करनेके कारण स्थानीय भाषाओंमें, पहले बोलचालकी भाषामें और बादमें साहित्यमें भी परिवर्तन होता रहा।

साधारणतः यह प्रश्न अुठता है कि अिस पारस्परिक मेल-जोलने स्थानीय भाषाओंपर ही क्यों प्रभाव डाला, अर्थात् अरबी, फारसी तथा तुर्की जैसी विदेशी भाषाओंके शब्द स्थानीय भाषाओंमें ही क्यों मिलते

और व्यवहृत होते रहे, विदेशी भाषाओंपर स्थानीय भाषाओंका प्रभाव क्यों नहीं पड़ा। अिसका सीधा-सा अुत्तर यह है कि अेक तो विदेशी भाषाअें जिन लोगोंके द्वारा आयीं वे शासक थे और वे भाषाअें स्थानविशेषमें अपने मूल रूपमें प्रचलित थीं। फिर भी फारसीके कुछ कवियोंने कहीं-कहीं स्थानीय भाषा अर्थात् हिन्दीके कुछ शब्दोंको अपनाया है। मगर यह केवल व्यक्तिगत रुचिकी बात थी, केवल पारस्परिक समन्वयकी स्वाभाविक भावनाके और कोअी अिसका कारण न था।

## दक्खिनी

अुस नयी बोलीका, जिसका प्रारम्भ पंजाबपर महमूद ग़ज़नवीके अधिकारके बादसे ही हो गया था, साहित्यिक रूप हमें दक्षिणमें दिखाअी देता है। यद्यपि कुछ लेखकोंका अैसा अनुमान है कि ग़ज़नवी कालमें ख़्वाजा मसअूद साद सलमानने फारसीके साथ अुस कालकी मिली-जुली बोलीमें भी कविताअें रची थीं। मगर अिसका कोअी प्रमाण प्राप्त नहीं है। प्रमाणित रूपमें दक्षिणके बहमनी कालमें ही हमें अैसी रचनाअें मिलती हैं, जिन्हें अिस नयी बोलीकी रचनाओंमें भाषाकी दृष्टिसे महत्त्व दिया जा सकता है।

दक्षिणके ख़्वाजा बन्दानेवाज़ गेसूदराज़ (१३२१–१४२३ अी०) की दो रचनाअें 'मेअराजुल आशेक़ीन' और 'हिदायतनामा' ही अैसी प्राप्त रचनाअें हैं, जिन्हें भाषाके अिस नये रूपकी प्रारम्भिक कड़ियाँ कहा जा सकता है।

ख़्वाजा बन्दानेवाज़के बाद मीराँजी शम्सुल अुश्शाक़ (जन्म सन् १४९६) की 'ख़ुशनामा', 'ख़ुशनग़ज़', 'शहादतुलहक़ीक़त', 'शरहमरग़ूबुल-

कुलूब' आदि पद्य तथा गद्यकी रचनाअें हैं, जिनको देखनेसे तत्कालीन सामाजिक प्रवृत्तियोंके अनुसार भाषाके मोड़का पता चलता है।

मगर अिस नयी भाषाको जो स्थानकी अपेक्षासे हिन्दवीके बाद स्थायी रूपसे दक्खिनी कहलाने लगी थी साहित्यिक रूप कुतुबशाही कालमें मुहम्मद कुली कुतुबशाहके द्वारा प्राप्त हुआ। मुहम्मद कुली कुतुबशाह (सन् १५८०-१६११) न केवल विद्या तथा साहित्यका प्रेमी ही था बल्कि स्वयं कवि था, और अैसा कवि जिसने लगभग सभी विषयोंपर कविताअें लिखी हैं— अपनी प्रेमिका भागमतीके रूपवर्णनसे लेकर, फूल, फल, पक्षी, त्यौहार, विवाह तथा अुत्सवों आदि—हर विषयपर अुसने रचना की है। अुसका यह कविता-संग्रह १८०० पृष्ठोंका है, जिसमें लगभग—अेक लाख पद हैं।

अन्तिम बहमनी शासक महमूद शाहके कालमें दक्षिणमें पाँच विभिन्न राज्योंकी स्थापना हुअी और सन् १५१८ में बहमनी शासनका सदाके लिअे अन्त हो गया। अिन पाँच राज्योंमें गोलकुंडाके कुतुबशाही राज्यने और बीजापुरके आदिलशाही राज्यने विद्या तथा साहित्यकी अुन्नतिमें अुल्लेखनीय कार्य किया है। दक्षिणके दक्खिनी साहित्य और अिस नयी भाषाकी विकास शृंखलामें अिन दो राज्योंका अत्यधिक महत्त्व है।

मगर फिर भी यह भाषा, जिसमें व्यापक प्रवृत्तियाँ थीं, न तो दक्षिणकी सीमाओंमें आबद्ध रहकर ही पर्याप्त अुन्नति कर सकती थी और न दिल्लीमें ही साधारण बोलचालके अलावा अुसे अभी कोअी साहित्यिक रूप मिल पाया था। बल्कि होता यह था कि बोलचालकी

भाषा तो यह नयी बोली ही थी, मगर विदेशसे आये मुसलमान लेखक और कवि राज-भाषा फारसीमें ही रचनाअें करते थे।

अिस प्रकारकी अस्वाभाविक विभिन्नता कुतुबुद्दीन अैबकके गुलाम वंशके कालसे ही थोड़े-बहुत रूपमें अुत्पन्न हो गयी थी, बोलनेमें लोग अेक मिली-जुली भाषाका व्यवहार करते थे और अुस अवस्थामें तो यह प्रयोग अनिवार्य हो जाता था जब विदेशोंसे आये हुअे मुसलमान और स्थानीय हिन्दुओंमें परस्पर अेक दूसरेसे बोलनेका मौका आता था। मगर जो बोली पहले विवश होकर बोलनी पड़ती थी वह अधिक दिनोंतक साथ-साथ रहनेके कारण अेक हदतक सहज ग्राह्य बन गयी। अकबरने राजनीतिक कारणोंसे राजपूतोंसे विवाह करके तथा अपनी हिन्दू रानियों और हिन्दू सम्बन्धियोंको प्रसन्न करनेके लिअे स्थानीय बोलीको अपनाकर अिस दिशामें और भी प्रगति की।

मगर यह सब होनेके बाद भी अनेक संस्कृत ग्रन्थोंका फारसी अनुवाद होने, अकबर द्वारा अपने दरबारियोंको हिन्दी भाषामें अुपाधियाँ देने, हिन्दी कवियोंको पुरस्कृत करने और स्वयं भी स्थानीय हिन्दी बोलनेचालने तथा लिखने-पढ़नेका प्रयत्न करने और दीन अिलाही पंथतक स्थापित करनेके बाद भी, अुस समयतक जबतक कि वली औरंगाबादी सन् १७०० में दिल्ली नहीं गये और अुन्होंने साअदुल्ला 'गुलशन' को अपनी दक्खिनी कविताअें नहीं सुनायीं, न तो दिल्लीके लोगोंको ही अिस बातका पता चला था कि अुनकी अुस बोलचालकी भाषामें भी काव्यरचना की जा सकती है और न किसीको यही ज्ञात था कि अिसी प्रकारकी भाषामें, अर्थात् दक्खिनीमें लगभग चार सौ वर्ष पूर्वसे दक्षिणमें काव्यरचना हो रही है।

वली औरंगाबादीकी कविताअें सुनकर न केवल साअदुल्ला 'गुलशन' प्रभावित ही हुअे बल्कि अुनको अिस भाषामें जिसमें वे थोड़ी-बहुत रचनाअें करते भी थे, कविता करनेके लिअे प्रेरित किया। साथ ही वलीकी कविताओंका दिल्लीवालोंपर अितना प्रभाव पड़ा कि लोग बहुत ही जल्दी अुनकी जैसी भाषामें कविताअें भी रचने लगे, अुस स्थानीय भाषामें जिसे वे अभी बोलचालतक ही सीमित किये हुअे थे। निश्चय ही अुनके अिस प्रभावका यह परिणाम था कि जब वे दूसरी बार सन् १७२२ में अपने कवितासंग्रहको लेकर दिल्ली पहुँचे तो अुनकी बड़ी आवभगत की गयी।

'वली' का पूरा नाम शम्सुद्दीन वलीअुल्लाह था। वली अुनका अुपनाम था। वे औरंगाबादमें पैदा हुअे थे। २० वर्षकी अवस्थामें वे गुजरात गये। गुजरातमें अहमदाबादमें अुन्होंने कुछ दिनोंतक शिक्षा ग्रहण की। फिर अपने मित्र अबुल मआलीके साथ सन् १७०० में दिल्लीकी यात्रा की तथा शाह साअदुल्लाह 'गुलशन' से आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया और कुछ दिनों बाद जन्मभूमि वापस लौट आये। अिसके बाद सन् १७२२ में अुन्होंने फिर दिल्लीकी यात्रा की। सन् १७४१ में अहमदाबादमें अुनकी मृत्यु हुअी।

भाषाकी दृष्टिसे वलीकी भाषा तीन भागोंमें विभक्त की जा सकती है। पहला भाग दिल्ली जानेसे पूर्व शुद्ध दक्खिनी है। दूसरा दिल्ली जानेके बादका अरबी–फारसी मिश्रित दक्खिनी है। और तीसरा वह है जिसे दिल्लीकी तत्कालीन भाषाके अनुसार 'रेख़ता' कह सकते हैं।

## रेखता

अरबी, फारसी तथा स्थानीय भाषाओं, जैसे ब्रज और राजस्थानी से मिलकर दिल्लीमें जो अेक नयी बोली बनी थी, वह शाहजहाँके कालमें अुन्नति करके बोलचालसे चिट्ठी-पत्रीतक पहुँच चुकी थी। यहाँ-तक कि जब औरंगजेब और शुजामें युद्ध छिड़ा हुआ था, स्वयं शाहजहाँने अिसी नयी बोलीमें शुजाको अेक पत्र लिखा था, जो किसी तरह औरंगजेबके हाथमें पड़ गया था। मगर दिल्लीके लोगोंमें अिस बोलीमें काव्य-रचनाकी ओर अभी विशेष प्रवृत्ति नहीं हुअी थी।

वली औरंगाबादीके पहली बार सन् १७०० में दिल्ली आनेका यह प्रभाव तो पड़ा कि मूसवीखाँ 'फ़ितरत', मिरज़ा अब्दुल क़ादिर 'बेदिल' और मिरज़ा अब्दुल ग़नी 'क़बूल' जैसे दो-चार लोग मनोरंजनके लिअे कभी-कभी काव्यरचना करने लगे थे। मगर जब वली दुबारा सन् १७२२ में मुहम्मद शाहके समयमें अपने दीवान (काव्यसंग्रह) को लेकर दिल्ली पहुँचे तो अिसका असर यह हुआ कि थोड़े समय बाद दिल्लीमें कअी अच्छे कवि पैदा हो गये।

शरफुद्दीन 'मजमून' (१६८६–१७४५ अी०) शाह मुबारक 'आबरू' (१६९२–१७४७ अी०) मुहम्मद शाकिर 'नाजी' (मृत्यु १७५४ अी०) ज़हूरुद्दीन 'हातिम' (१६९९–१७९१ अी०) और मिरज़ा मज़हरे जानेजानाँ (१६९९–१७८१ अी०) आदि दिल्लीके अैसे कवि थे, जिनकी भाषा क़रीब-क़रीब वही थी, जिसे अुस ज़मानेमें पढ़े-लिखे लोग बोलते थे और जिसको कविताके रूपमें अुस समय और अुसके बाद भी बहुत दिनों तक 'रेखता' कहा जाता था।

रेखता अेक फारसी शब्द है और अिसका अर्थ है गिरी-पड़ी वस्तु। यद्यपि आरम्भमें यह नाम अैसी कविताके लिअे प्रयुक्त होता था, जिसका अेक चरण फारसी और अेक बोलचालकी भाषाका हो। मगर बादमें यह शब्द अुस सारी कविताके लिअे व्यवहृत होने लगा, जो मुसलमान कवियों द्वारा तत्कालीन बोलचालकी भाषामें की जाती थी। और अिसका व्यवहार वली औरंगाबादीके बादसे अभी सौ-डेढ़ सौ साल पहले-तक होता रहा है।

## हिन्दी या रेखता

जिस प्रकार दक्षिणमें अिस नयी बोली या भाषाको कभी हिन्दी, कभी देहलवी और कभी दक्खिनी कहते रहे, और बादमें दक्खिनी अुसका स्थायी नाम पड़ गया। अुसी तरह दिल्लीमें भी अिस नयी तथा मिली-जुली बोलीको हिन्दवी, हिन्दी, देहलवी तथा रेखताके नामसे सम्बोधित करते थे, जो बादमें रेखताके नामसे प्रसिद्ध हुअी। किन्तु स्मरण रहे कि अधि-कांशमें यह शब्द कविताके लिअे ही प्रयुक्त होता था।

यहाँ यह बात याद रखनेकी है कि जो लोग अिस नयी बोली या भाषाको हिन्दवी या हिन्दी कहते थे, अुनका अभिप्राय अरबी और फारसीके अलावा अुस भाषाको व्यक्त-करना होता था, जो हिन्दुस्तानियों-की भाषा हो। अुस समय हिन्दुस्तानियोंकी भाषामें अनेक गिरी-पड़ी चीज़ें अर्थात् शब्द सम्मिलित थे। अिसीलिअे 'रेखता' शब्द प्रचलित हो गया।

रेखता शब्दको लेकर दिल्लीके कवियोंने या दिल्लीसे प्रभावित अन्य कवियोंने भाषाके सम्बन्धमें अनेक प्रकारके विचार व्यक्त किये हैं, यथा—

यह रेखता 'वली' का जाकर अुसे सुनाओ।
रखता है फ़िक्र रौशन जो अनवरीके मानिन्द॥

—वली औरंगाबादी

'क़ायम' मैं ग़ज़ल तौर किया रेखता वरना।
अिक बात लचर सी बज़बाने दखिनी थी॥

—क़ायम चाँदपुरी

पढ़ते फिरेंगे गलियोंमें अिन रेखतोंको लोग।
मुद्दत रहेंगी याद यह बातें हमारियाँ॥

—मीर तक़ी देहलवी

मरतबा रेखताका और हुआ।
मोतबर फारसीके तौर हुआ॥

—मीर असर

तूने वह 'सौदा' ज़बाने रेखता अीजाद की।
पढ़के अिक आलम अुठाता है तेरे अशआर फ़ैज़॥

—सौदा देहलवी

अिस प्रकार हम देखते हैं कि जिस नयी बोली या भाषाको दक्षिणमें स्थानबोधक नाम 'दक्खिनी' से सम्बोधित किया गया, अुसे दिल्लीमें भी पहिले 'देहलवी' कहा जाता था मगर बादमें स्थायी रूपसे रेखता ही कहा जाने लगा।

मगर 'दक्खिनी' की ही तरह 'रेखता' में भी पहिले हिन्दी शब्दोंका बहुत अधिक प्रयोग होता था, जो बादमें कम होता गया।

फिर भी, कुछ लोग अैसे थे, जो अुसी प्रकारकी हिन्दी शब्दोंसे लदी भाषाके पक्षमें थे।

## अुर्दू

'अुर्दू' तुर्की भाषाका शब्द है। बाबरके साथ सन् १५२६ अी० के लगभग यह शब्द भारत आया, और बहुत दिनोंतक अपने वास्तविक अर्थके अनुसार सेना या सेनाके कैम्पोंके लिअे व्यवहृत होता रहा। सम्राट अकबर (१५४३—१६०५ अी०) के शासनकालमें राजसेना और राजधानीके सैनिक कैम्पको 'अुर्दुअे मोअल्ला' कहा जाता था, और अुस बाजारको अुर्दू बाजार कहते थे। फिर और चूँकि अुस सेनामें स्थान-स्थानके लोग थे, और परस्पर व्यवहारके लिअे अेक प्रकारकी मिलीजुली बोली बोलते थे अिसलिअे आरम्भमें लोग अुस बोलीको "जबाने अुर्दू" अर्थात् "सेनाकी बोली" कहने लगे।

बहुत दिनोंतक अिस शब्दका अिसी रूपमें व्यवहार होते रहनेके बाद 'अुर्दू' शब्दका प्रयोग अैसे व्यापक अर्थोंमें होने लगा, जिसमें दक्षिणकी दक्खिनी, गुजरातकी गूजरी बोली, दिल्लीकी देहलवी तथा रेखता, हिन्दी हिन्दवी और भाषा सभीका समावेश हो गया हो और अुर्दू भाषा अपने व्यापक अर्थमें सामने आ गयी। और चूँकि दिल्ली राजधानी थी, अिस-लिअे अुर्दू साहित्य (काव्य) तत्कालीन सामन्तशाही प्रवृत्तियोंके अनुसार दिल्ली तथा दिल्लीके आसपास विकासकी मंजिलें तय करता रहा।

दिल्लीके अुन कवियोंमें जिन्होंने रेखता (अुर्दू) में रचनाअें कीं और अिस भाषाको अधिकसे अधिक विकसित किया, मुख्य कवियोंके नाम अिस प्रकार हैं: शाह हातिम (१६६६–१७६१ अी०) शाह मुबारक 'आबरू'

(मृत्यु १७५० अी० ), ख़ाने आरज़ू (१६८६–१७५६ अी० ), शरफुद्दीन 'मज़मून' (मृत्यु १७४५ अी० ), मिरज़ा मज़हरे जाने जानाँ (१६६८–१७८१ अी० ), मिरज़ा रफ़ीअ 'सौदा' (१७१३–१७८० अी० ), मीर तक़ी 'मीर' (१७२४–१८१० अी० ), क़ायम चाँदपुरी (मृत्यु लगभग १७९५ अी० ), मीर दर्द (१७१६ अी०-१७५८ अी० ), मीर हसन (१७३६–१७८६ अी० ), गुलाम हमदानी 'मसहफ़ी' (१७५०–१८२४ अी० ), अिन्शाअुल्ला खाँ अिन्शा' (मृत्यु १८१७ अी० ), सआदत यारखाँ 'रंगी' (१७५६–१८३४ अी० ), वली मुहम्मद 'नज़ीर' (१७४०–१८३० अी० ), शेख़ अिब्राहीम ज़ौक़ (१७०९–१८५४ अी० ), मीरज़ा असदुल्लाह खाँ 'ग़ालिब' (१७९७–१८६६ अी० ) और हकीम मोमिन खाँ 'मोमिन' (१८००अी० १८५१ अी० )।

वली औरंगाबादीकी रचनाओंसे प्रभावित होनेके कारण जिन कवियोंने तत्कालीन बोलचालकी भाषा रेखता (अुर्दू ) में कविताअें रचना शुरू किया, अुनकी देखा-देखी दिल्लीमें अनेक छोटे-बड़े कवि पैदा हुअे और रेखताका आम प्रचलन हो गया। मगर कुछ ही दिनों बाद जब दिल्लीपर मराठों और अफ़गानोंके आक्रमण प्रारम्भ हुअे, तो अन्य नागरिकोंकी तरह ही कवियोंको भी दिल्ली छोड़कर अिधर-अुधर भागना पड़ा।

जिस समय दिल्लीपर विपत्तियोंके पहाड़ टूट रहे थे और राजाश्रयी कवियोंके लिअे कोअी ठिकाना न था, लखनअूके नवाबोंमें साहित्यप्रेम चरम सीमापर पहुँचा हुआ था। दिल्लीकी तबाहीने लखनअूको आबाद किया। लखनअूमें न केवल दिल्लीसे भागे हुअे कवियोंने आश्रय पाया बल्कि नवाबोंके साहित्यप्रेमने पहिलेसे ही वहाँ साहित्यिक वातावरण अुत्पन्न कर दिया था, अिसलिअे जब दिल्लीसे कवि भाग रहे थे तो सबसे पहिले

दिल्लीके बाद लखनअू ही अुर्दू साहित्यका आश्रय-स्थान बना। और सौदा, मीर, मसहफ़ी और अिन्शाके अलावा हैदरअली 'आतिश' (मृत्यु १८४६ अी०), अिमामबख्श 'नासिख' (मृत्यु १८३८ अी०), दयाशंकर 'नसीम' (१८११-१८४३ अी०), मीर बबरअली 'अनीस' (१८०२-१८७४ अी०) और मिरज़ा सलामतअली 'दबीर' (१८०२-१८७५ अी०) जैसे अनेक कवियोंके कारण लखनअू अुर्दू-साहित्यका केन्द्र बन गया।

अिस प्रकार दक्षिणके बाद विकसित भाषाके लखनअू और दिल्ली दो केन्द्र बने।

कुछ दिनों पहिलेतक लखनअू और दिल्लीकी कविताका अपना अलग-अलग स्थान था। भावकी दृष्टिसे तथा स्वाभाविक अुद्‌गारोंकी दृष्टिसे दिल्लीकी कविताको प्रधानता प्राप्त थी और अलंकारपूर्ण भाषाकी दृष्टिसे लखनअूकी कविता अनुपम समझी जाती थी। मगर अंग्रेजोंके शासनके रूपमें देशमें जो नया युग आया अुसने लखनअू और दिल्ली ही क्या सारे देशको अेकरूप कर दिया। न मालूम अपनी जीवन समस्याओंको लेकर कितने लोग लखनअूसे दिल्ली गये और दिल्लीसे लखनअू आये तथा रामपुर, हैदराबाद, अजीमाबाद (पटना) आदि-आदि स्थानोंमें फैल गये। 'दाग' देहलवी (१८३१ १६०५ अी०) को रामपुर और हैदराबादमें जीवनके दिन बिताने पड़े और अमीर मीनाअी (१८२८-१६०० अी०) लखनवीको रामपुर और अिधर-अुधर भटककर अुम्र काटनी पड़ी। अिसलिअे लखनअू और दिल्लीकी कविताका भेद आज अितिहासकी बात रह गया है।

## अुर्दूकाव्यकी नयी धारा

अुर्दूकाव्य धारा जिन लोगोंके कारण नयी दिशाकी ओर प्रवाहित होने लगी, अुनमें मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' (मृत्यु १६१० अी०)

मौलाना अल्ताफ़ हुसैन 'हाली' (१८३७-१९१२ अी०), मुहम्मद अिस्माअील मेरठी (१८४४–१९१७ अी०), अकबर अिलाहाबादी (१८४६–१९२१ अी०), पंडित बृजनारायण चकबस्त (१८८२–१९२६ अी०) और डाक्टर मुहम्मद अिक़बाल (१८७५–१९३८ अी०) मुख्य हैं।

अैतिहासिक रूपमें अुर्दू काव्यमें नयी धाराका आरम्भ सन् १८५७ के विद्रोहके बादसे ही हुआ जब कि सामंतशाही युगका खोखलापन प्रकट हो चुका था और कवियोंके लिअे दरबारोंका आश्रय शेष नहीं रहा। अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षाने कविताके अिस नये झुकावको और भी प्रेरित किया। समाजमें कुछ अैसे व्यक्ति भी सदासे होते रहे हैं, जिनका जीवन तथा कार्य भविष्यका अेक धुंधला चित्र सामने रख देता है। अुर्दू साहित्यके अितिहासमें हमें अैसे लोग मरसिया कहनेवालों और नज़ीर अकबराबादी जैसे कवियोंके रूपमें मिलते हैं।

मरसियाका विषय रूढ़ अर्थोंमें अिमाम हुसैनके बलिदानसे सम्बन्धित है। लेकिन कविको बाह्य जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली अनेक बातोंका भी वर्णन करना पड़ता है। यह वर्णन कहीं नाटकीय संवादोंकी झलक दिखाता है तो कहीं प्रकृति वर्णनके चित्र अुपस्थित करता है। अिस प्रकार मरसिया कहनेवाले कवियों और नज़ीर अकबरावादीके अुन वर्णनोंमें, जिनमें अुन्होंने त्यौहारों तथा अुत्सवोंका, पशु-पक्षियोंका और ऋतुओंका वर्णन किया है, अुसमें हमें अुर्दू कविताके अुस भविष्यकी झलक मिल जाती है, जिसने बादमें हाली अकबर अिस्माअिल मेरठी, चकबस्त और अिक़बालकी वाणीमें अपनेको साकार किया।

सन् १८५७ के विद्रोहके बाद हमारे जीवनने अेक नयी करवट बदली। हमने बहुत-सी बातों तथा विश्वासोंको तिलाञ्जलि दी और बहुत-सी

नयी बातोंका स्वागत किया। अतीतकी याद, वर्तमानसे असन्तोष और भविष्यके प्रति आशा अथवा निराशाके भाव तथा देश और जातिकी चिन्ता मुख्यतः अुर्दू कविताकी नयी धाराके विषय रहे।

विचार और भावोंके साथ छन्दोंका परिवर्तन भी नयी धाराकी कवितामें हुआ अर्थात् ग़ज़ल (प्रेमगीत) के स्थानपर नज़्म (वर्णनात्मक छन्द) का प्रचलन हो गया।

मगर नयी धाराका तथा छन्दोंके परिवर्तनका यह रूप भी स्थायी न रह सका और संसारकी नयी समस्याओंकी पृष्ठभूमिमें युगकी बढ़ती हुअी चेतनाने साहित्यमें प्रगतिवादको जन्म दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि अिक़बाल और अुनके समयमें ही (सन् १९३५–३६से ही) अुर्दूमें तरक़्क़ीपसन्द मुसन्नेफ़ीन (प्रगतिशील लेखकों) का अेक समुदाय पैदा हो गया। फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़', असरारुल हक़ 'मजाज़', जोश मलीहाबादी, अली सरदार जाफ़री, रघुपति सहाय 'फ़िराक़', मख़मूर जालंधरी, 'साहिर' लुधयानवी, मीराजी, नून मीम राशिद अित्यादि और आज अुर्दूके लगभग सभी नये लेखक तथा कवि या तो प्रगतिशील हैं या प्रगतिशील आन्दोलनसे प्रभावित हैं।

असग़र, जिगर, फ़ानी, हसरत, साग़र, बेख़ुद, आरज़ू, सफ़ी, सीमाब अित्यादि कवि भी हमारे आजके युगमें पैदा हुअे हैं और अेक सीमातक अुनपर भी युगका थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ा ही है, और अिस प्रकार अितिहासकी दृष्टिसे अुनका जिक्र करना भी आवश्यक है।

## अुर्दू गद्यका विकास

अुर्दू ( दक्खिनी ) गद्यका विकास भी पद्यकी तरह दक्षिणमें हुआ और अिसका श्रेय भी मुस्लिम सन्तोंको ही है। हाँ, अितना अवश्य है कि सन्तोंका यह प्रारम्भिक युग अधिकांशतः धर्मप्रचारसे ही सम्बन्धित था अिसलिअे अुस कालके गद्यको अैतिहासिक दृष्टिसे ही महत्त्व दिया जा सकता है। और अुसके विकसित रूपको देखनेके लिअे हमें शताब्दियोंका अन्तर तय करना पड़ेगा।

अबतककी खोजके अनुसार अुर्दू ( दक्खिनी ) गद्यकी जो रचनाअें प्राप्त हुअी हैं, अुनमें शेख़ अैनुद्दीन गंजुल अिल्म (सन् १२७६–१३६५ अी०) की वे पुस्तकें हैं जो धार्मिक विधि-निषेध अथवा प्रार्थना अुपासनासे सम्बन्धित हैं। अुनके बाद ख़्वाजा बन्दानेवाज़ गेसूदराज़ (१३२१–१४२२ अी०) की रचनाअें 'मेअराजुल आशेक़ीन' और 'हिदायतनामा' सैय्यद अब्दुल्लाह हुसैनीकी 'निशाते अिश्क़' और मीराजी शम्सुल अुश्शाक़ ( जन्म १४९६ अी० ) की 'जलतरंग' * 'गुलबास' और 'शरह मरग़ूबुल कुलूब' मुख्य हैं।

अिसी प्रकार मुल्ला वजहीकी गद्यरचना 'सबरस' ( १६३४ अी० ), शाह मुहम्मद क़ादिरी नूरे दरिया ( १६७३ अी० ) और शाह मीरकी 'असरारुत्तौहीद' दक्षिणमें होनेवाली अुर्दू ( दक्खिनी ) की प्रारम्भिक गद्य-रचनाअें हैं।

---

* 'जलतरंग' और 'गुलबास' को कुछ लोग मीराजी शम्सुल अुश्शाक़के पुत्र शाह बुरहानुद्दीन जानम (मृत्यु सन् १५५२ अी०) की रचनाअें मानते हैं।

दक्षिण भारतमें होनेवाली अिन गद्यरचनाओंके बहुत दिन बाद अर्थात् सन् १७३२ अी० में फ़ज़लीने 'दह मजलिस' नामकी गद्यरचना की। अिस कालकी दूसरी प्रसिद्ध रचना मीर अता हुसैन खाँ 'तहसीन' की 'नवतर्ज़ मुरस्सा' है, जो अमीर, ख़ुसरोकी 'चहार दुरवेश' नामक फारसी किताबका अुर्दू (रेखता) में गद्यानुवाद है। 'नवतर्ज मुरस्सा' सन् १७७० अी० की रचना है।

मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद'के कथनानुसार मिरज़ा रफ़ीअ सौदाने भी मीर तक़ी 'मीर' की मसनवी 'शोलअे अिश्क़'को अुर्दू (रेखता) गद्यमें लिखा था।

## फोर्ट विलियम कालेज

सन् १७८३ अी० में डाक्टर जान गिलक्रिस्ट (सन् १७५९—१८४७ अी०) अीस्ट अिण्डिया कम्पनीमें नौकर हुअे। अुन्होंने अपने अधिकारियोंके सामने यह विचार रखा कि अंग्रेज अफ़सरोंको फारसी नहीं. अुसी प्रचलित भाषा हिन्दुस्तनीको जाननेकी जरूरत है जो आम जनताके दैनिक व्यवहारकी भाषा है। लार्ड वेलेजलीने, जो अुस समय गवर्नर-जनरल थे, गिलक्रिस्टकी सलाहको स्वीकार कर लिया और सन् १८०० अी० में फोर्ट विलियम कालेजकी स्थापना की। डाक्टर गिलक्रिस्टको अिस कालेजका प्रधान अधिकारी नियुक्त किया गया।

फोर्ट विलियम कालेज और डाक्टर गिलक्रिस्टके व्यक्तिगत प्रोत्साहन तथा मुगल शासनके अंतसे आयी व्यापक अस्तव्यस्तताने अुर्दूके कअी कवियों और लेखकोंको फोर्ट विलियम कालेजमें अेकत्र कर

दिया। जान गिलक्रिस्टने स्वयं भी देशी भाषामें रचनाअें कीं तथा संग्रह किये। मीर अम्मन देहलवी, मिरज़ा अली 'लुत्फ़', हैदरबख्श हैदरी, बहादुर अली 'हुसैनी', शेर अली 'अफ़सोस', निहालचंद लाहौरी, काज़िम अली 'जवान', मज़हर अली 'विला', बेनीनारायण 'जहाँ', तथा लल्लूलाल जैसे अनेक गद्य-लेखक फोर्ट विलियम कालेजमें आश्रय पाकर रचनाअें करते रहे।

मीर अम्मन देहलवीकी रचना 'बागो बहार' (१८०१ अी०) हैदरबख्श हैदरीकी 'तोता कहानी', काजिम अली 'जवान' की 'सिंहासन बत्तीसी', 'शकुन्तला नाटक'का अनुवाद तथा स्वयं डाक्टर जान गिलक्रिस्ट-की रचनाओंका अुर्दू गद्यके विकासमें खास स्थान है।

अिस कालके दूसरे स्वतंत्र गद्य-लेखकोंमें शाह रफ़ीअुद्दीन (१७४६–१८१८ अी०) शाह अब्दुल क़ादिर (१७५३–१८१५ अी०) मौलवी अिस्माअील शहीद ( १७६६–१८३१ अी० ) जिन्होंने कुरानके अनुवाद तथा धार्मिक पुस्तकें आदि लिखी हैं, अुल्लेखनीय हैं।

## ग़ालिब और सर सैय्यद अहमद

यद्यपि फोर्ट विलियम कालेज और कलकत्ता तथा श्रीरामपुरके पादरियों द्वारा किये तथा अन्य लोगोंसे कराये गये अिंजीलके अनुवादोंका अुर्दू गद्यके विकासमें अुल्लेखनीय स्थान है, मगर अुस समय गद्यका रूप निखर नहीं पाया था। निखरा हुआ सुन्दर गद्य ग़ालिबके पत्रोंमें ही हमें प्राप्त होता है। और यह गद्य अितना प्रवाहपूर्ण है कि आज भी अुसमें पुरानापन बहुत कम दिखाअी देता है।

ग़ालिबके बाद सर सैय्यद ( १८१७–१८९८ अी० ) के रूपमें अुर्दूको अेक अैसा जागरूक व्यक्तित्व मिला, जिसने सन् १८५७ के बादकी अवस्थाओंको अच्छी तरह समझा और युरोपीय सभ्यताके गुणोंको ग्रहण किया और अुन्हीं गुणोंमें साहित्य-रचनाकी वह नवीन शैली भी थी, जिससे अभीतक लोग परिचित न थे।

सर सैय्यदकी शैली सीधी-सादी तथा आकर्षक थी। गहनसे गहन विषयको भी वे सीधी-सादी भाषामें समझा सकते थे। सर सैय्यदकी रचना-ओंमें सबसे प्रसिद्ध 'आसारुस्सनादीद' है। अुन्होंने 'असबाब बग़ावत हिन्द' नामक अेक पुस्तिका, 'तारीख़ बिजनौर' तथा बरनीकी फारसी किताब 'तारीख़ फ़ीरोज़शाही' को भी शुद्ध किया था। वे 'तहजीबुल अख़लाक़' नामकी अेक पत्रिका भी निकालते थे।

सर सैय्यदके गद्य और आजके गद्यमें कोअी अधिक अन्तर नहीं दिखाअी देता। जो अन्तर है वह विकास श्रृंखलाका स्वाभाविक अन्तर है।

सर सैय्यदके साथ लेखकोंमें मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' और मौलाना अल्ताफ़ हुसैन 'हाली' का नाम स्वभावतः ही आ जाता है। आज़ाद और हाली कविके साथ ही गद्यलेखक भी थे।

'आज़ाद' की रचनाओंमें 'आबेहयात', 'नैरंगेख़याल', 'सख़ुन-दाने फ़ारस' और 'दरबारे अकबरी' मुख्य है। अिनमें भी 'आबेहयात' जो वास्तवमें अुर्दू कविताका अितिहास है, आकर्षक शैलीके कारण अधिक प्रसिद्ध है।

'हाली' की रचनाओंमें 'हयातसादी', 'हयाते जावेद', 'यादगारे ग़ालिब' और 'मुकद्दमा शेर ओ शायरी' को मुख्यता प्राप्त है। 'मुकद्दमा शेर ओ शायरी' काव्यविवेचन संबंधी पुस्तक है।

## अल्लामा शिबली

अल्लामा शिबली ( १८५७–१९१४ अी० ) ने अुर्दूमें अनेक अैतिहासिक ग्रथोंकी रचना की। वे बहुत प्रामाणिक लेखकोंमें माने जाते हैं। वैसे अुनकी रचनाओंकी संख्या बहुत अधिक है। विभिन्न प्रकारकी रुचिके कारण अन्होंने अितिहास, जीवनी, यात्रावर्णन, पुरातत्व तथा साहित्य और भाषा सभीपर रचनाअें की हैं। मगर 'सीरतुन्नबी', 'शेरुल-अजम', 'अलफ़ारूक़', 'अलगेज़ाली', 'सवानेह मौलाना रूम', 'मोआजना अनीसवदबीर' आदि अुनकी महत्त्वपूर्ण रचनाअें हैं।

अल्लामा शिबलीको अिस दृष्टिसे भी विशेष महत्त्व प्राप्त है कि अुनके बाद ही अुर्दूमें अितिहास तथा खोजपूर्ण विषयोंकी ओर लोगोंमें रुचि अुत्पन्न हुअी, और अुनके शिष्यों तथा अनसे प्रभावित लेखकोंकी अेक परम्परा ही चल पड़ी। अिस परम्परामें सैय्यद सुलेमान नदवी और अब्दुस्सलाम नदवी जैसे प्रसिद्ध लेखक हैं।

## आजका गद्य

पद्यकी तरह गद्य भी बहुत दिनोंतक सामन्तशाही प्रवृत्तियोंका प्रतिबिम्ब बना रहा। अैसे लोग जिनका दरबारोंसे सम्बन्ध था तथा जिनकी रचनाअें दरबारोंमें पहुँचने और सम्मान प्राप्त करनेका साधन मात्र होती थीं, और अैसे लोग भी जो किसी कारणसे दरबारोंसे दूर रहते थे, सभीपर युग-प्रवृत्तियोंका किसी न किसी रूपमें प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। मगर जैसे-जैसे समय बदलता गया और सामन्तशाहीका तिलिस्म टूटता गया वैसे-वैसे साहित्य ( पद्य और गद्य ) भी नया रूप लेता गया।

अेक ज़माना था जब लोग शासकोंका मन बहलानेके लिअे 'देवों और परियों' की कहानियाँ सुनाकर अुन्हें जागतेमें स्वप्न दिखाया करते थे। और यथार्थकी ओरसे मुँह मोड़कर स्वप्नलोकमें विचरण किया करते थे। मगर जब समय बदला और स्वप्न भंग हुआ तो साहित्यमें सामाजिकताके तत्त्व आने लगे और 'देवों तथा परियों' की कहानियोंके स्थानपर सामाजिक जीवनका चित्रण किया जाने लगा। गद्य (अुपन्यास) लेखकोंमें मौलाना नज़ीर अहमद (१८३१–१९१२ अी०), पण्डित रतननाथ 'शरसार' (१८४७–१९०२ अी०), मौलाना अब्दुल हलीम 'शरर' (१८६०–१९२६ अी०) मिरज़ा हादी रुसवा जैसे लेखकोंमें हमें सामाजिक जीवनका चित्रण मिलता है।

मगर आजका नया लेखक केवल सामाजिक जीवनका चित्रण करके ही संतोष नहीं प्राप्त कर सकता। वह आजकी समस्याअें और अुनका समाधान भी रखना चाहता है। अैसे लेखकोंमें प्रेमचंद, नेयाज़ फतेहपुरी, फैयाज़अली, अज़ीमबेग चग़ताअी, कृष्णचन्द्र, सआदत हसन मिण्टो, अज़ीज अहमद, राजेन्द्रसिंह बेदी, ख्वाज़ा अहमद अब्बास, अुपेन्द्रनाथ 'अश्क', असमत चग़ताअी, डाक्टर अलीम, अेहतिशाम हुसैन, आलेअहमद सुरुर, रशीद अहमद सिद्दीक़ी आदि अुपन्यास, कहानी, निबन्ध तथा समालोचना क्षेत्रमें विशेष अुल्लेखनीय हैं।

अुर्दू भाषाके विकासको ठीकसे समझनेके लिअे कअी बातोंकी ओर ध्यान देना पड़ता है तथा कअी अुलझनोंको सुलझाना पड़ता है। क्यों कि यद्यपि अुर्दूका विकास मुसलमानोंके भारतमें आनेके बाद हुआ तथापि यह विदेशी मुसलमानोंकी भाषा न थी, बल्कि अुनकी भाषा अरबी, फारसी और तुर्कीके साथ भारतीय भाषाओंके मेलके कारण यह नयी भाषा बनी

थी। और फिर न तो भारत कोअी छोटा-सा देश था और न सारे भारत पर विदेशोंसे आनेवाले किसी अेक देशके मुसलमानोंका आधिपत्य ही हो सका। भारत अेक बड़ा देश था, अुसमें अनेक भाषाअें प्रचलित थीं आनेवाले विदेशी मुसलमान न तो किसी अेक देशसे आये थे और न अेक साथ पूरे भारतपर आधिपत्य ही जमा सके थे। परिणाम यह हुआ कि अरब और अीरान जैसे देशोंके मुसलमान आये तो अपनी-अपनी भाषाअें और जातीय विशेषताओंको भी साथ लाये। फिर अैसे लोग भारतके जिन-जिन प्रदेशोंमें जब-जब पहुँचे वहाँकी स्थानीय भाषाओंके साथ अुनकी भाषाअें मिलकर अेक नयी भाषाको विकसित करती रहीं और अैसी भाषाका स्थानिकता-सूचक नाम भी पड़ता रहा।

जिस प्रकार भारतमें अनेक प्रदेश और अुनकी अनेक भाषाअें होनेके साथ ही अुनमें परस्पर अेक आन्तरिक साम्य भी था, अुसी तरह विदेशसे आनेवाले मुसलमानोंकी भाषाओंमें अन्तर होनेके साथ ही आन्तरिक साम्य था।

अरबके मुसलनानोंकी भाषा अरबी थी और अुनकी भाषामें स्थानीय ध्वनियोंको ही व्यक्त करनेकी शक्ति थी। मगर अीरानके मुसलमानोंकी अपनी कुछ स्थानीय ध्वनियाँ भी थीं, जिनको व्यक्त करनेके लिअे अरबी अक्षरोंको बढ़ाना पड़ा, जो फारसी लिपि कही गयी। अरब और अीरानकी ध्वनियोंके अलावा भारतकी कुछ और भी ध्वनियाँ हैं, जिनको फारसी लिपिके द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता अिसलिअे स्वभावतः ही अुस नयी बोली और भाषाके लिअे अेक अैसी लिपिका विकास हुआ, जिसके द्वारा थोड़ा-बहुत भारतीय ध्वनियोंको भी व्यक्त किया जा सके। यही अुर्दू लिपि हुअी।

अुर्दू लिपिमें अरबी, फारसी और हिन्दी (भारतीय) ध्वनियाँ सम्मिलित हैं और लिपिकी ही तरह भाषा भी अरबी, फारसी, और हिन्दी शब्दोंसे मिलकर बनी है।

भाषाकी खास प्रकृतिके कारण बहुधा अरबी और फारसी शब्दोंसे अुच्चारण अुर्दूमें कुछके कुछ हो जाते हैं और अर्थमें भी भेद पड़ जाता है। हिन्दी शब्दोंका भी अुर्दूमें अिसी प्रकारका प्रयोग होता है।

अुर्दू भाषा तथा साहित्यपर अरबीसे फारसीका अधिक प्रभाव है। अिसका कारण फारस अथवा फारसी भाषा-भाषियोंका भारतमें अधिक संख्यामें आना और अपने साहित्यसहित भारतमें स्थायी रूपसे ठहरना है।

अीरानी जीवनसे सम्बन्धित विषय तथा वहाँके अैतिहासिक तथा पौराणिक चरित्र जो पारसी चरित्र हैं; यथा, जमशेद, बहेराम, रुस्तम-सोहराब, असफंदयार, शीरीं-फरहाद, नौशीरवाँ, मानी, बेहज़ाद अित्यादि और जो अिरानी साहित्यमें व्याप्त हैं, अुर्दूमें भी चले आये। अिसी तरह अरबों द्वारा यूनानी चरित्र, यथा सुकरात ( साक्रेटीज ), अफलातू ( प्लेटो ), अरस्तू ( अरिस्टोटल ), सिकन्दर ( अलेक्ज़ेंडर ) आदि अरबी, फारसी और अुर्दूमें चले आये।

भारतीय चरित्रोंमें नल और दमयंतीका भी लैला-मजनू और शीरीं-फरहादके साथ अुर्दूसे सम्बन्ध हो गया है। कभी-कभी राधा और कृष्णकी झलक भी अुर्दूमें मिल जाती है। बाँसुरी, कजरारे नयन, साँवरी सूरत, अलबेली चाल अित्यादि हिन्दीकी तरह अुर्दू काव्यके भी प्यारे विषय हैं।

---